वर्ष ३३ **वैदिक धर्म** अंक ६

क्रमांक ५२

ज्येष्ठ, विक्रम संवत् २००९, जून १९५२

विपुल धन चाहिये

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥

ऋ. १।९२।८

हे भाग्ययुक्त उषा देवी ! तू अन्न और बल बढाती हुई यहाँ प्रकाश फैला रही है । इस प्रकारकी तेजस्विनी तू ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे हमें यशस्वी वीरोंके साथ रहनेवाले बहुतसे सेवक, गौ, घोडे आदि पशु एवं वाहनोंके बाहुल्यसे युक्त धन, उत्तम कर्म करनेकी शक्ति और उत्तम कीर्ति प्राप्त हो ।

हमारे पास कुशलतासे उत्तम कर्म करनेकी शक्ति हो । उस शक्तिसे हमें यश और कीर्ति प्राप्त हो, हमें उत्तम और पौष्टिक अन्न प्राप्त हो । उससे हमारा बल बढे तथा उत्तम प्रकाशसे उन्नतिका मार्ग हमें दिखाई देवे । हमें वीर पुत्र-पौत्र हों, हमारे पास बहुतसे सेवक हों। गौ, घोडे, रथ और धनकी हमारे पास समृद्धि होवे, किसी भी बातकी न्यूनता हमें न हो ।

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिक धर्म

सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु　　वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

संस्कृत परीक्षाओंके नवीन केन्द्र

(३) श्री. शिवाभाई सोमाभाई प्रजापति युवक मंडल मु. पो.**पंडोली** Pandoli वाया आणद Kaira)

(४) ,, वीरूमल टी. टहिल्याणी विधवाश्रम पो. अम्बर Amber (जि. जयपुर)

(५) ,, जि. गोपालकृष्ण शर्मा व्यवस्थापक पो. **नूतनकल** ता. सूर्यपेट (जि. नलगोंडा)

(६) ,, श्रीपाद रामचंद्र भारथी शास्त्री श्री. पथकी याच्या जवळ देणें मु. पो. **जगदलपुर** (बास्तार स्टेट)

(७) ,, राघवेन्द्राचार्य अध्यक्ष, सनातन धर्म विद्यालय मु. रायश्री, पो. **शिवपुरी** (मध्य भारत)

(८) ,, स्वामी चिन्मयानंदपुरी 'संपादक' 'भारतीविद्या' स्टेशन कनोज पो. **मकरन्द नगर** (फतेह गढ)

(९) ,, लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री मिडल स्कूल पो **रामायणपेठ** तालुका मेदक,(हैद्राबाद दक्षीण)

(१०) ,, अंबादासराव पाठक बी ए. मुख्याध्यापक. विद्यामंदीर, हाईस्कूल पो. जि. **परभणि**

(११) ,, श्रीधर धुंडिराज देव शिक्षक, सरकारी हाईस्कूल मु पो. **हिंगोली** जि परभणि (दक्खन)

(१२) ,, रामचन्द्र दिगंबर शास्त्री साजुळ शिक्षक हाईस्कूल मु. पो **वसमतनगर** जि. परभणि (दक्खन)

(१३) ,, त्र्यंबक गणपत शास्त्री पुराणीक मु पो. **औंढ** जि. परभणि (दक्खन)

(१४) ,, गोविन्द मनोहर बोम्बले सं शिक्षक सरकारी प्राइमरी शाळा मु.पो. **जाफराबाद** (जि औरंगाबाद)N S R.

(१५) ,, श्रीमती सरोजनीबाई एकबोटे B.A प्रधान अध्यापिका सरकारी गर्ल्स हाईस्कूल पो.**बीड**N S.R

(१६) श्री. शंकरराव त्रिंबकराव बिन्दू, माध्यामिक पाठशाळा पो. **कळब** (जि. उस्मानाबाद) Hyderabad

(१७) ,, पुरुषोत्तम गोविंदराव पिंपळगावकर शिक्षक पो. **पटोदा** जि. बीड

(१८) ,, जानकी बल्लभ माथुर व्यवस्थापक श्री. गीताप्रचार-मंडल सरदार रोड नं २ पो. **जोधपुर**

(१९) ,, माधवराव दत्तात्रयराव पाठक जामबाग-वकीलवाडी पो. **हैद्राबाद** दक्खन

(२०) ,, शरदचंद्र गंगाधर देवता बासुदेव C/O चन्द्रात्रे केमिस्ट मेंगेनीज माइन मु. पो. **शिवराजपुर** (जि. पंचमहाल)

(२१) ,, श्रीपादीचन्द्र शेखराचार्य मु. पो. **कोण्डापुर** ता, वरंगल तहत वर्धन्नापेट (हैद्राबाद)

(२२) ,, चन्द्रकान्त फूलाराम उपाध्याय श्री. गौड शेरी, मु. पो **कावीठा** ता बोरसद (kaira)

(२३) ,, हरीभाऊ गणेश जोशी C/O आनंद मेडिकल स्टोअर्स, नदी किनारा पो. **परळी बैजनाथ** (बीड)

(२४) ,, स्वामी ब्रह्मानन्दजी तीर्थ विश्वेश्वर मंदिर (कुटीर) पो. **मण्डलेश्वर** वाया बरवाहा (मध्य भारत)

(२५) ,, आचार्य वि० श्रा० चौधरी शिक्षक प्रचार मंडळ मु पो. **सांगवी** ता. यावल (पू. खानदेश)

(२६) श्री. नारायण स्वामी रामदासी श्री. समर्थाश्रम पो. **पोतंगल** ता. बोधन (निझामाबाद-दक्खन)

(२७) ,, रामचरनसिंह हरिसिंह राजपूत ठुलेश्वर मन्दिर, चैतन्याश्रम पो. **पैठण** श्री. क्षेत्र (जि. औरंगाबाद)

(२८) ,, बालकृष्ण चिंतामणि शंकर भाय C/O प्रिन्सिपल पोद्दार हाईस्कूल पो. **सान्ताक्रूझ** मुंबई

(२९) ,, रतिलाल एन. पाठक प्रिन्सिपल, गोपाळजी हेमराज हाईस्कूल, गांधीरोड पो **बोरिवली** ईस्ट बंदर मुंबई.

(३०) ,, प्रिन्सिपल, महोदय, शेठ, एन. एल, हाईस्कूल गोडबंदर पो **मलाड** मुंबई

(३१) ,, टी एफ. रंगाटिया प्रिन्सिपल पो. **कान्दीवली** मुंबई

(३२) ,, भाऊराव सिद्रामपा चिवनसुरे पा. **कासार-सिरसी** वाया हुमनाबाद (हैद्राबाद)

(३३) ,, मुख्याध्यापक महोदय, सेठ फत्तेलाल लाभचन्द हाईस्कूल पो. **धामणगांव** (बरार)

(३४) ,, दे बा धर्माधिकारी यो. नू. विद्यालय पो. **मोमीनाबाद** (हैद्राबाद)

(३५) ,, चीमनलाल बी. शाह B A., B. T प्रिन्सिपल, धी पायोनीअर हाईस्कूल पो. **भरुच**

(३६) ,, रमाकान्त शास्त्री विद्याभास्कर H. M. डी. डी. एच हाईस्कूल पो. **झगडीआ** वाया अंकलेश्वर

(३७) ,, जशवंतराय रतिलाल महेता मु. उंडापाडा पो. **धोलका** (अमदाबाद)

(३८) ,, दिगम्बरराव विनायकराव काटेकर वकील मु. पो. **अष्टि** (जि. बीड) हैद्राबाद

संस्कृत परीक्षाओंकी प्रगति

हमें अपने केन्द्रव्यवस्थापकों, प्रचारकों, अध्यापकों एवं अन्य सहयोगियोंको यह सूचित करते हुए परम हर्ष एवं सन्तोष अनुभव हो रहा है कि सन १९५२ के प्रथम सत्रकी परीक्षाओंकी प्रगति अत्यन्त आशापूर्ण रही। इससे हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ होगया है कि सन १९५२ के द्वितीय सत्रकी होनेवाली परीक्षाओंमें परीक्षार्थियोंकी संख्या एवं केन्द्रोंकी संख्या खूब बढ़ेगी। सन् १९५२ की पूर्वार्धकी परीक्षार्थियोंकी संख्या तीन हजारसे ऊपर रही है और १११ केन्द्रोंसे परीक्षार्थियोंने परीक्षा दी है। सांस्कृतिक वातावरणको निर्माण करनेमें हमारे इस प्रयत्नको जनता द्वारा और भी अधिक प्रोत्साहन मिल रहा है। हम इन सब सहयोगोंके लिये अपने उदार एवं कर्मठ सहयोगियोंका हृदयपूर्वक अभिनन्दन करते हैं।

ग्रीष्मावकाश और उसके पश्चात्

भारतके सभी शिक्षणालयोंके ग्रीष्मावकाशका यह समय है। इन लम्बे अवकाशोंके दिनोंमें संस्कृतानुरागी प्रत्येक शिक्षक एवं छात्रसे हम निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस कार्यको अधिक व्यापक बनानेके लिये पूरा पूरा प्रयत्न करें, जिससे आगामी परीक्षाओंके लिये एक विशाल कार्यक्षेत्र हमें मिल सके। क्योंकि ग्रीष्मावकाशके पश्चात् शिक्षणालय खुलते ही संस्कृत वर्गोंका कार्य सुचारु रूपसे प्रारम्भ होजाना है।

आवश्यक सूचनायें

१– आगामी परीक्षा तिथि ६-७ सितंबर १९५२ ई.

२– आवेदनपत्र भरनेकी तिथि १९ जुलै १९५२ ई.

३– पारडी कार्यालय भेजनेकी अन्तिम तिथि २६ जुलै १९५२ ई.

४– सीधे आवेदनपत्र भरनेकी तिथि ३० जून १९५२ ई.

आगामी योजना

क्रमशः प्रगतिकी ओर अग्रसर होती हुई संस्कृत परीक्षाओंकी लोकप्रियता देखकर हमारा उत्साह भी बढ़ता जा रहा है। हमारी सम्पूर्ण सफलता एवं आशाके केन्द्र हमारे वे आदरणीय प्रचारक एवं अध्यापक हैं जिनका त्यागपूर्ण एवं श्रद्धापूर्ण सहयोग हमें मिल रहा है।

ता० १६ से २२ मई तक परीक्षा मन्त्रीजीने हैद्राबाद, आकला, औरङ्गाबाद एवं भुसावल विभागीय केन्द्रव्यवस्थापकों एवं प्रचारकोंसे मिलकर भावी योजनाकी जो रूपरेखा बनाई है वह आगामी अङ्कोंमें प्रकाशित की जावेगी। इस योजनाके अन्तर्गत १– परीक्षाओंको सरकारी मान्यता प्राप्त कराना, २–स्थानीय संस्कृत प्रचार समितियोंका आर्थिक विकास करना तथा ३– प्रचार दृष्टिसे विभागीय संगठनोंका आकलन करना आदि रहेगा।

वेद में शरीर विज्ञान

हृदय व हृत्क्रिया तथा रक्तसंचार

(लेखक- श्री लक्ष्मणसिंहजी कोठारी वेदालंकार (प्रतिष्ठित स्नातक) एडवोकेट M. R. A. S. अजमेर)

आर्यसमाज के तृतीय नियम में महर्षि दयानन्द लिखते हैं " वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है । " परंतु आर्यसमाजमें ऐसे कितने विद्वान हैं जो इसमे विश्वास रखते हो । आर्यसमाजमें कितने विद्वान हैं जिन्होने वेदोंके हाथ लगाने से पूर्व छहों वेदांगों का अध्ययन किया हो। इधर उधर की किताबोंका संकलन कर कहींका ईट कहींका रोडा भानवतीने कुनबा जोडा " कहावत के अनुसार आज भानवतीके कुनबे तो तय्यार हो रहे हैं, परन्तु स्वाध्यायपूर्वक मनन के अनन्तर किया गया कितने मन्त्रोंका भावार्थ आज उपलब्ध है। आर्य समाजके लिये यह एक शर्म की बात है। क्या ऋषि के नाम की माला जपनेवाले ऋषिभक्त अब भी चेतेंगे। वेद अनुसंधान के लिये एकत्रित किया गया हजारो लाखों रुपया प्रतिवर्ष खर्च हो रहा है, परन्तु फिरभी आर्यसमाजका दिनबदिन ह्रास ही हो रहा है। यदि आर्यसमाज समय की चपेटो से बचना चाहता है तो उसे अपने साहित्य को उत्कृष्ट विचारों से पूर्ण करना होगा तथा उसमें नवीन तथा बुद्धि-संगत विश्लेषण का समावेश करना होगा। यदि ऐसा नहीं किया गया तो वेद-वेद रटते हुए भी हम वेदों को रसातल में पहुंचा देंगे।

हम पहले भी आपके सामने अनेक मंत्रों की गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयत्न कर चुके हैं। आज पुनः एक मंत्र पर अपने विचार प्रकट करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि वेद कितने उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

ऋग्वेद का मंत्र है-

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥ ऋग् ४।५८।३

मंत्र का सीधा अर्थ निम्न प्रकार है।

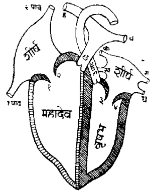
एक वृषभ है वह सदैव रोता रहता है। वह महादेव अर्थात् बडा देव सब मनुष्यों मे- मानव मात्र में-प्रविष्ट हुआ हुआ है। उसके चार शृंग- सींग हैं, तीन पाद-पैर हैं, दो शीर्ष - सिर हैं तथा सात हस्त-हाथ है ' तीन ओर से धारित हो रहा है- बंधा हुआ है।

कितनी सुन्दर पहेली है। कितने सुन्दर तरीके से वेदने एक ही मंत्र के द्वारा हमे वह ज्ञान दे दिया है, जिसके लिये पाश्चात्य जगत् ने खोज कर अनेकों पुस्तके लिख डाली हैं। परन्तु हम लोग अपने इस खजाने को कभी खोजने का प्रयत्न भी नहीं करते है। वेद की पहेलियाँ योंही नहीं सुलझती हैं। परन्तु हम अज्ञानी लोग, विद्वत्ता का दावा करनेवाले, बिना सोचे विचारे जो चाहते सो लिख डालते। अनेको वर्षो के विचार के अनन्तर हमने इस मंत्र का जो अर्थ किया है वह पाठको के सन्मुख है। इस बात का निर्णय पाठक ही करेंगे कि इसका कौनसा अर्थ ठीक है।

वेद एक काव्य है। वेदार्थ करने से पूर्व हमें अपनी कल्पना शक्ति को तीव्र करना होगा। कल्पना यद्यपि कल्पना है, पर वह यथार्थ है, काल्पनिक नहीं है। जो कल्पना की जाती है उसका भास स्पष्ट होना चाहिये। वह कल्पना अशुद्ध है जिसको समझने के लिये फिर दूसरी कल्पना करनी पडे। यदि वृषभ का अर्थ यज्ञ किया जावे तो फिर उसके सिर, पैर, हाथ आदि स्पष्ट होने चाहिये। वृषभ की कल्पना भी साक्षात् होनी चाहिये। पर वह नही होता है। उसके हाथ- पैर भी कल्पना से ही कल्पित करने पडते हैं। यदि वेदार्थ करते समय इतनी कल्पना की जाने लगी तो फिर वेद का अनर्थ होते देर नहीं लगेगी। यदि इसी प्रकार ब्रह्म अर्थ किया तो फिर क्या उसके हाथ- पैर-सिर हैं, क्या वह निरन्तर शब्द करता रहता है। इनके भी फिर काल्पनिक अर्थ ही करने पडेंगे। क्या वह कल्पना

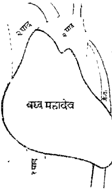
उस मनमें वृषभ का भास करायेगी? यदि वह वृषभ तथा हाथ-पैर का भास नहीं कराती है तो वह कल्पना भी अशुद्ध है। इतना लिखने के अनन्तर हम मन्त्रोक्त वृषभ का वर्णन कर आपको न केवल काल्पनिक परन्तु इस विचित्र तथा वास्तविक महादेव, जिसके चार सींग, तीन पैर, दो सिर तथा सात हाथ हैं, का प्रदर्शन करायेंगे।

देखिये यह निम्न चित्र वैदिक महादेवका है। ☞



इससे पहले कि हम वेद मंत्र के शब्दों की अर्थ व व्याख्या करे, वैदिक शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख कर दें ताकि आगे का वर्णन समझने में सुगमता हो।

सूचकाङ्क	अंग्रेजी शब्द	संस्कृत शब्द	वैदिक शब्द	हिन्दी शब्द
	HEART	हृदय	महादेव	दिल
१,२,३,४	CUSPS	कपाट	शृंगाः	सींग
१ पाद, २ पाद	UENA-CAVA	शिरा	पादाः	पैर
३ पाद	AORTA	धमनी		
	AURICLES	ग्राहक कोष्ठ	शीर्षे	सिर
	RIGHT VENTRICLE	दक्षिण क्षेपक कोष्ठ	महादेवः	
	LEFT VENTRICLE	वाम क्षेपक कोष्ठ	वृषभः	
क, ख, ग, घ,	PULMONARY VEINS	शिरा	हस्तासः	हाथ
ङ, च, छ	PULMONARYARTERY	धमनी		
	CONICLE	त्रिशकु	त्रिधा	तिकोना
	PERICARDIUM		बद्धः	बन्द



महादेव

१. हम अनेक बार लिख चुके हैं कि बिना ऋषि व देवता पर विचार किये, किसी भी वेद-मंत्र का ठीक २ ज्ञान नहीं हो सकता। अतः हम सबसे पूर्व इस मंत्र के ऋषि व देवत पर विचार करेंगे।

इस सूक्तका ऋषि वामदेव है। वामदेवका अर्थ है वाम प्रदेशमें रहनेवाला देव। देव शब्द की व्याख्या अभी हम नीचे करेंगे। वामका अर्थ है बायां। शरीरमें बांयी ओर रहनेवाला हृदय है। इस मंत्रका देवता है "अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा।" इनमें एक शब्द है गावः। यास्काचार्यके अनुसार 'गावः'का अर्थ इन्द्रियां, चमडा, सरेस, मज्जा आदि है-

अथवा शरीरके भाग । ' गच्छति इति गौः ' इस व्युत्पत्तिसे भी निरन्तर गतिशील हृदय ही इसका विषय होता है । इस प्रकार शरीरके वाम पक्षमें रहनेवाला शरीरभाग, जो निरन्तर गति करता हो वह हृदयके अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता । इससे भी यही प्रतीत होता है कि इस मंत्रका विषय हृदय है ।

२ वेद बतलाता है कि यह महादेव " मर्त्यां आ विवेश " सब मनुष्योंमें बैठा हुआ है । इसलिये इसका आसन मनुष्य (मर्त्य) मात्र में होना चाहिये । मनुष्य के अन्दर बहुतसे अंग प्रत्यंग हैं, फिर महादेव से 'हृदय ' ही क्यों लेना चाहिये ? इस शंका का समाधान करते हुए ही वेद कहता है कि वह महादेव ' रोरवीति ' निरन्तर शब्द करता है । मनुष्य शरीर में निरन्तर शब्द करने वाला एक हृदय ही है । इससे भी स्पष्ट है कि यह मंत्र महादेव द्वारा हृदय का ही उल्लेख करता है ।

३ देव शब्द **देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा** व्युत्पत्ति से बनता है । इसका अर्थ है कि देव वह है जो दान दे दूसरे को उज्ज्वल करे व चमकाये । हृदय अशुद्ध रक्त को लेता है तथा शुद्ध चमकीले रक्त का प्रदान करता है, इसलिये वह देव है । इस व्युत्पत्तिसे फेफडों को भी देव कहा जा सकता है । परन्तु उन सब देवों में श्रेष्ठ देव हृदय है । अतः वही देवाधिदेव-महादेव कहलाया ।

४ देव शब्द इंद्रियवाची भी है । दूसरे शब्दों में शरीर के भागों को देव कहा जाता है । शरीर के सम्पूर्ण हिस्सो मे सबसे मुख्य हिस्सा हृदय है । इसलिये वह सर्वश्रेष्ठ देव ' महादेव ' कहलाता है ।

५ महादेव का समानवाची, दूसरा शब्द वेदने स्वयं इसी मंत्र में ' वृषभ ' बतलाया है । ' वृषभ ' वामक्षेपक कोष्ठ का द्योतक है, यह तो आगे बतलायेगें, परन्तु यहां यह महादेव को भी सूचित करता है । वृषभ महादेव का वाहन है । वाहन के द्वारा अनेकों बार उसके स्वामीका भी उल्लेख होता है । क्योंकि हृदय खून की वर्षा करता है, वह ' वृषभ ' है । जब हम महादेव की कल्पना करते हैं तो उसके साथ ही वृषभ की कल्पना भी होती है । इसी तरह से हृदय में जिनको अंग्रेजी में Ventricles कहते हैं, दो हैं । वैद्यक की पुस्तकों में भी इन दोनो का एक ही नाम क्षेपककोष्ठ रखा है । परन्तु वेद यहां ऐसे पदार्थ की कल्पना करता है जिससे दो वस्तुओं का ग्रहण होता है । उन दोनों का दो नामो से वर्णन करता है । महादेव तथा वृषभ । इसी वृषभ रूढ महादेव याने हृदय का वर्णन ही इस मंत्र में है, हमारा ऐसा विचार है ।

६. हृदय के लिये महादेव की कल्पना कवि- मस्तिष्क के लिये बिलकुल असंभाव्य नहीं है । ' ३ पाद ' AORTA के द्वारा हृदय शरीर को रक्त पहुंचाता है । जैसा कि चित्र सं १ मे दिखाया गया है यह हृदय के ऊपरि भाग से बाहर निकलता है । वहा से एकदम नीचे पहुंचता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है । क्या AORTA का FALL गंगा के FALL से नहीं मिलता है ? जैसे गंगा द्वारा भारत की जमीन सींची गई, उसी प्रकार यह AORTA सारे शरीर को सींचता है । इस प्रकार कवि की कल्पना में भी यह हृदय नामक शरीरांग महादेव ही है ।

इस प्रकार महादेव की स्थापना कर, अब हम उसके प्रत्येक अंग का वर्णन करेंगे ।

महादेव

' हम सदैव अपनी दैनिक भाषा में प्रयोग करते हैं ' " रोटी खा ली " क्या हम केवल रोटी ही खाते हैं ? नहीं, रोटी के साथ शाक का भी परिगणन हम करते हैं । इसी प्रकार ' महादेव ' शब्द सम्पूर्ण हृदय का उल्लेख करते हुए भी हृदय के उस भाग का उल्लेख करता है जो उसमें केन्द्र-स्थानीय है । प्रत्येक प्राणी में एक हृदय होता है, उसकी आत्मा होती है । इसी प्रकार जब हृदय में एक प्राणी की कल्पना की तो उसका भी हृदय होना चाहिये । इस हृदय का जो हृदय है वही महादेव है ।

भगवान के कालरूप स्वरूप को महादेव कहा है । जो अंग शरीर का सम्पूर्ण रक्त पीता है वही महादेव है । हृदय के चित्र नं २ में जो दक्षिण वेन्ट्रिकल है वही सारा रक्त पीता है. इसलिए वह महादेव है । हृदय के सब हिस्सो में यह दक्षिण वैन्ट्रिकल ही सबसे बडा है । इसलिये भी इसके लिये महादेव शब्द का प्रयोग ठीक है । मनुष्य के शरीर मे हृदय की स्थापना जिस प्रकार की गई है, उसमें भी दक्षिण वेन्ट्रिकल ऊपर है । वायु वैन्ट्रिकल नीचे है । इसलिये भी दक्षिण वैन्ट्रिकल ही महादेव हो सकता है । महादेव व वृषभ दो शब्द दोनों Ventricles के लिये प्रयुक्त किये गये हैं । वेद के अनुसार केवल एक ही Ven

tricle खून की वर्षा करता है। हृदय का वाम क्षेपक कोष्ठ ही सारे शरीर में खून भेजता है अतः वृषभ शब्द वाम क्षेपक कोष्ठ तथा महादेव दाक्षिण -क्षेपक कोष्ठ को बतलाता है। क्योंकि वाम वेन्ट्रिकल नीचे है, कवि कल्पना करता है कि वह दक्षिण Ventricles की वाहन है। महादेवका वाहन वृषभ है। वाहन की कल्पना करने के कारण वेद कहता है **महादेवो आ विवेश** महादेव बैठा है। प्रत्येक समुदाय में सबसे मुख्य अस्तित्व ही सबसे आगे रहता है। इसी प्रकार यह दक्षिण वेन्ट्रिकल ही सबसे अधिक सामने है। इसलिये दक्षिण वेन्ट्रिकल के लिये 'महादेव' शब्द का प्रयोग ठीक है।

वृषभः

निरुक्तकार यास्क वृषभ की व्याख्या करते हुए लिखते हैं। **वर्षतीति व अति वहति, तद् वृषकर्मा१ वर्षणाद् वृषभः।** जो वर्षा करता है वह वृषभ है। **वृषु सेचने** उणादि अभच् प्रत्यय करने से वृषभ शब्द बनता है, जो रक्त से शरीरका सिंचन करता है। जो सारे शरीर को शुद्ध रक्त से वर्षित करता है वह वृषभ है। वर्षा का ही पानी शुद्ध होता है। इसीलिये इसीका प्रयोग किया गया है। चित्र नं. २ में जो वृषभ है यही आधुनिक भाषामें वाम वेन्ट्रिकल कहलाता है।

अस्य

इस मंत्रमें दो क्रियायें 'रोरवीति' आविवेश' तथा दो ही कर्ता वृषभ तथा महादेव का उल्लेख है। अतः इसमें दो पदार्थों का उल्लेख भासित होता है, परन्तु **अस्य** कह कर वेद बतलाता है कि ये दोनों एक ही हैं जिस प्रकार एक नासिका के दो छेद होते हैं, उसी प्रकार एक ही महादेव के महादेव व वृषभ नामक दो खंड हैं। परन्तु वास्तव में दोनों ही वृषभ हैं तथा दोनों ही महादेव हैं। दूसरे शब्दों में 'वृषभ' गौणरूप से महादेव भी है और महादेव गौणरूप से वृषभ भी है। अर्थात् वृषभ भी गौणरूप से खून इकठ्ठा करता है तथा महादेव भी गौण रूप से खून की वर्षा करता है। इसी प्रकार जो शब्द होता है उसमें मुख्यरूपसे 'वृषभ' का शब्द है, परन्तु महादेव भी हलकासा शब्द करता है। महादेव बैठा हुआ है परन्तु ठीक उसी आसन Diaphragm पर वृषभ भी बैठा है। इस प्रकार मुख्यरूपसे महादेव व वृषभ के कार्यों को बतलाते हुए भी 'अस्य' इस एक वचनान्त प्रयोग द्वारा गौणरूपसे उन दोनों को एक ही कोटि में रख दिया है, यही वेद की विशेषता है।

चत्वारि शृंगाः

वेद बतलाता है, इस वृषभ के चार शृंग- सींग हैं। यह प्रथा ठीक नहीं कि जो चार हों उसी को सींग बना दिया जावे। उस पदार्थ व अवयव में शृंग की समानता भी होनी चाहिये। जरा आप महादेव के नग्न चित्र को देखिये। मुझे आपको यह बतलाना नहीं पडेगा कि सींग कौनसे हैं। इनकी आकृति स्वयं आपको इनसे परिचित करा देगी। जिन अवयवों पर १. २. ३. व ४ के अंक लिखे हुए हैं वे ही शृंग व सींग हैं। कवि की कल्पना वास्तविक है, काल्पनिक नहीं।

'शृंग' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए निरुक्ताचार्य यास्क ने एक व्युत्पत्ति यह भी की है, **शॄ हिंसायाम्** तथा **गम्लृ गतौ** से शृंग बनाया है। जिस का अर्थ है जो मार मार कर गति देता है। पशु भी अपने शत्रुओं को मार कर भगाने के लिये ही सींग का प्रयोग करते हैं। उणादि सूत्र के अनुसार भी यदि **शॄ हिंसायाम्** से गन् प्रत्यय कर शृंग शब्द बनाया जावे तो भी शृंग का कार्य मारना ही होता है। किसी भी रूप से देखिये- जिसके द्वारा मार मार कर भगाया जावे वही शृंग है। यहां भी इन शृंगों का यही कार्य है। महादेव व वृषभ में जो खून भरता है, उस खून को आगे शरीर में पहुंचाने के लिये खूनपर जो दबाव पडता है, उस दबाव के कारण ही जैसे पक्षी के पंख हिलते हैं, उसी प्रकार ये शृंग भी हिलते हैं। हवा पर जो पंख द्वारा दबाव पडता है उसीसे पक्षी ऊपर चढता है, इसी प्रकार यहां भी इन शृंगों के द्वारा खून पर जो दबाव पडता है उससे वह खून 'छ' नामक हस्त व '३ पाद' नामक पैर के द्वारा ऊपर चढ जाता है। ये शृंग निरन्तर खून पर चोट करते रहते हैं जैसे पक्षी के पंख हवा पर चोट करते रहते हैं। इन्हीं शृंगों को अंग्रेजी में CUSPS कहा है। संस्कृत में इन्हीं को कपाट कहा है।

आधुनिक विज्ञान ने इस प्रकार के मुख्य रूप से ५ कपाट माने हैं। दाक्षिण वृषभ में ३ तथा वाम वृषभ में २। परन्तु साथ ही यह भी लिखते हैं कि इनके अतिरिक्त छोटे २ जिनकी उपेक्षा की जा सके, और भी CUSP मिलते हैं। अतः ५ कपाट व ४ कपाट मानने में किसी प्रकार का अन्तर नहीं। यह गिनती मुख्यता की अपेक्षा से है। परन्तु इसके अतिरिक्त

एक बात और है । जैसा कि संस्कृत भाषा में इनको कपाट कहा है अर्थात् दरवाजे के किवाड । साधारणतया प्रत्येक दरवाजे में दो ही किवाड होते हैं । दो से अधिक किवाड किसी दरवाजे में नहीं लगाये जाते हैं । यदि दरवाजा अधिक चौडा है तो दो किवाडों के तीन या चार हिस्से करके, कब्जे लगा कर सिमटनेवाले किवाड बनाये जायेंगे । यद्यपि पल्ले ३ या ४ बनाये गये हैं, किवाड फिर भी दो ही कहलायेंगे । परन्तु उनको दो किवाड गिनना या अधिक गिनना यह उस गिनने वाले मनुष्य पर आश्रित है । यदि उनको ४ भी कह दिया जावे तो भी गलती नहीं । इसी प्रकार ' शीर्ष ' से वृषभ में जाने का जो रास्ता है या जो दरवाजा है उसके ये किवाड हैं । क्योंकि किवाड प्रायः दो ही होते हैं, कविने यहां भी दो दरवाजें में चार कपाट की कल्पना कर चार सींग हैं ऐसा ही बतलाया है । माननीय हृदय में जिस वृषभ में ३ शृंग हैं, उनमें भी मुख्यरूपसे दो ही है । तीसरा कुछ छोटा है । परन्तु वह अन्य छोटे CUSPS से काफी बडी है अतः उसका अलग परिगणन कर लिया है । काव्य की दृष्टि से उसमें दो कपाट की कल्पना भी गलत नहीं हैं ।

पुनश्च, इन कपाटों को वेद ने शृंग कहा है । शृंग में अनेको छोटे २ शृंग फूटते हैं । बारहसिंगा हिरण के शाखा प्रशाखाओं में अनेकों सींग हैं परन्तु फिर यदि कोई उसके दो सींग ही कहे तो गलती नहीं है । इस प्रकार से हम देखते हैं कि इस वृषभ के वास्तविक ४ शृंग हैं । आधुनिक रीति से यदि ५ या अधिक गिने जाते हैं तो किसी प्रकार का अन्तर नहीं है ।

द्वे शीर्षे

वेद में की गई उत्कृष्ट कल्पनाओंका यह मंत्र एक उदाहरण है । आप पुनः चित्र नं २ को देखिये । सिर स्पष्ट नजर आते हैं । चित्र को देखने से ही ऐसा प्रतीत होता है कि दो प्राणी बैठे हैं । यदि आप ग्राहक कोष्ठों में आंखों के लिये दायें में एक व बायें में दो शून्य बनायें तो चेहरा एक दम खिल उठेगा । ऐसी अवस्था में यदि ऑरिकल्स में सिर की कल्पना की गई है तो वह वास्तविक है । ये वास्तव में सिर ही हैं ।

शीर्ष शब्द ' श्रिञ् सेवायाम् ' धातु से बनता है । अतः शीर्ष का अर्थ हुआ सेवक । मनुष्य के सिर को भी शीर्ष इसी लिये कहते हैं कि उसमें रहनेवाला मस्तिष्क आत्मा का पथ प्रदर्शन करता है वह आत्माका सेवक है । यह हम ऊपर भी लिख चुके हैं कि आधार से (पूर्णता दिखाने के लिये) अनेकों बार आधेय का ग्रहण होता है । व्यवहार में भी मालिक के साथ २ उसके सेवक का भी मान होता ही है । सेवक का कर्तव्य स्वामी की इच्छाओंकी पूर्ति करना है । जिस वस्तु की आवश्यकता हो, उसे मुनस्सर कर देना है । यहां वृषभ की आवश्यकता खून की प्राप्ति है । बिना खून के वृषभ बरसेगा कैसे ? अतः जो उसको खून प्रदान करता है वह वृषभ का सेवक-शीर्ष है । उन्हीं दोनों क्षेपक कोष्टों को वेद ने शीर्ष कहा है । अंग्रेजी में इन्हीं को AURICLES कहा है । इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है ।

त्रयः पादाः

वेद कहता है- इस महादेव के पैर तीन हैं । कितना अद्भुत प्राणी है । पैर शरीर के वे अंग हैं जिन पर शरीर थमा रहता है । यदि किसी प्राणी के सब पैर काट दिये जावें तो वह प्राणी नीचे गिर पडेगा । इसी प्रकार यह महादेव हृदय, जिन नस नाडियों पर थमा हुआ है वे ही इसके पैर हैं । सारे शरीर का तंतुजाल इन्हीं तीनों में सिमट जाता है । वे ही तीनों हृदय में जाकर मिलती हैं । इन तीन में से दो शिरा है तथा एक धमनी है । शिराओंको अंग्रेजी में Vena cava कहा है । जो धमनी हृदय से निकलती है वह Aorta कहलाती है । ये ही तीनों नाडियाँ शरीर मे सबसे अधिक स्थूल हैं । Vena cava द्वारा शरीर का सारा अशुद्ध रक्त हृदय में पहुंचता है । Aorta द्वारा शुद्ध रक्त, हृदय से सारे शरीर में पहुंचाया जाता है ।

पादाः शब्द संस्कृत की पा पाने व दा दाने धातुओं से बनता है । इससे यह स्पष्ट है कि हृदय, या यह वैदिक महादेव तीन रास्तों के द्वारा पीता है तथा देता है । खून लेने व वापिस देने के लिये इस हृदय के तीन रास्ते व तीन नाडियाँ हैं । जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि Vena cava नामक दो शिराओं द्वारा यह हृदय शरीर का सम्पूर्ण रक्त पीता है तथा Aorta नामक धमनी के द्वारा वह हृदय उस सारे रक्त को शरीर को वापिस दे देता है । अतः यह महादेव तीन पादों वाला है, कितनी सुन्दर कल्पना है ।

सप्त हस्तासः

यह महादेव सात हाथों वाला है । हाथों का क्या कार्य

होता है। मनुष्य हाथ द्वारा ही कार्य करता है। मनुष्य का खास उपकरण हाथ ही है। अतः इस महादेव का जो खास उपकरण है वह हाथ है। हृदय का मुख्य कार्य रक्त को शुद्ध करना है। रक्त-शुद्धि फेफडों Lungs में होती है। रक्त को Lungs रूपी मकान में लाने-ले जाने का कार्य जो नस—नाडियाँ करती हैं वे ही इस महादेव के हाथ हैं। उनको संस्कृत में शिरा व धमनी कहते हैं। अंग्रेजी में इनको Pulmonary शिरा व Pulmonary धमनी कहते हैं। इनमे Veins तीन शिरा ड. च व छ हैं तथा धमनी चार क, ख, ग, घ है।

जिस प्रकार शरीर को दो हिस्सों में बाटा जा सकता है, दांयां व बांया शरीर के दाये भाग पर जो पदार्थ है उसको यदि बांये पर ले जाना है, अथवा वाम पक्ष से दक्षिण पक्षमें लाना है तो वह कार्य हाथों द्वारा ही होता है। इसी प्रकार हृदय भी दो भागोंमें बंटा हुआ है, दक्षिण तथा वाम। दक्षिण हिस्से से जो नाडियाँ खून को वाम हिस्से मे ले जाती है वे ही इस ' महादेव ' के हाथ हैं।

" हस्तासः" **हस हसने, तनु विस्तारे** तथा अस गति-दीप्त्यादानेषु इन तीन धातुओं से मिल कर बना है। इससे यह मालूम होता है कि इन नाडियोके एक सिरे हंसते हैं, खुलेहें जहा वे वायु से संपर्क करते हैं। इस प्रकार हंसते हुए विस्तृत होते हैं, फैलते हैं। तदनन्तर एक विशेष प्रकार की गमन क्रिया से पदार्थ दीप्त होता है, उज्ज्वल होता है, तदनन्तर उसका दान हो जाता है। ये हंसना, फैलना, गमन, दीपन तथा दान पांचों क्रियाओ का क्या अर्थ है, इसका विवेचन हम आगे करेंगे जब कि रक्तसंचार क्रिया का विचार किया जावेगा। ये पांचो कियायें ही इन हाथों की मानो अंगुलियां हैं।

त्रिधा

इस प्रकार सातों हाथों का उल्लेख कर वेद बतलाता है कि इसका तीन ओर से धारण हो रहा है।

चित्र संख्या १ की तरफ आप नजर डालेंगे तो आपको स्पष्ट प्रतीत होगा कि हृदय की आकृति त्रिशंकु की तरह से है। यह चौकोर नहीं है। हृदय में यह तीन ओर से थामा हुआ है। आजकल का विज्ञान भी इसको Coureil आकृति का सा ही मानता है और यह है। यह शब्द **धा धारणे** शब्द से बना है।

बद्धः

वेद कहता है कि इस प्रकार का यह महादेव कैद है। कारावास में बंधा पडा है। कितनी सुन्दर उपमा है। वास्तव में जिस महादेव का हमने वर्णन किया है वह गांठ रूप में अच्छी तरह से बंधा है, इस बन्धन को, इस कारावास को अंग्रेजी में Pericardium कहते हैं।

रोरवीति आ विवेश

रोरवीति **शब्द रु शब्दे** धातु का यङ्लुङन्त रूप है। अतः हृदय निरन्तर शब्द करता रहता है। यह इसका स्वभाव है। जिस दिन इसने शब्द करना बन्द कर दिया, उसी दिन यह वृषभ नहीं रहता है। शब्द के साथ खून की गति भी बन्द हो जाती है। यह वर्षा करना बन्द कर देता है।

' आ विवेश ' आ समन्तात् उपसर्ग के साथ विश् धातु का रूप है। इससे यह प्रतिपादित होता है कि हृदय एक स्थान पर बैठा हुआ भी सारे शरीरपर कन्ट्रोल -शासन करता है। सारे शरीर को अपनी शक्ति से व्याप्त करता है।

रोरवीति में लट् लकार का तथा महादेव के साथ लिट् लकार का प्रयोग है। इससे यही परिणाम निकलता है कि वास्तव में वामक्षेपक कोष्ठ (वृषभ) ही कार्य करता है। दक्षिण क्षेपक कोष्ठ तो खाली बैठा है। उसमें जो क्रिया है वह बाया Ventricle के कारण है। इस को स्पष्ट करने के लिये मैं घडी का उदाहरण दे सकता हूं। घडी के अन्दर अनेक चक्कर लगते हैं, परन्तु चाबी एक ही चक्कर में भरी जाती है जिसमें कमानी लगी है। सब चक्कर चलते हैं. पर उनका control बाल कमानी ही करती है जो स्वयं उसी चक्कर से चलती है। इसी प्रकार वृषभ ही महादेव को गति देता है।

रक्त संचार-क्रिया

वृषभ का अर्थ करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं, **प्रजां वर्षति, अति वृहति रेतः** इति परन्तु चुरादिगण की धातु **वृष शक्तिबन्धने** शक्ति बन्धनं प्रजनन सामर्थ्यं-इससे भी वृषभ शब्द की उत्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है सांड; क्योंकि वह शक्तिका भण्डार है, वेद के अनुसार वामक्षेपक कोष्ठ Left Ventricle ही शक्ति का भण्डार है। अतः संचार क्रिया का स्रोत यही है।

इससे पहले कि हम आगे चलें, यहां इस बातका उल्लेख करदेना

चाहते हैं कि वैदिक रक्तसंचार प्रक्रिया के वर्णन में तथा आधुनिक वैज्ञानिक रक्तसंचार की प्रक्रिया में थोडासा भेद है। परन्तु यह भेद वर्णनात्मक है, वास्तविक नहीं है। वह अन्तर निम्न है।

आधुनिक विज्ञान रक्तसंचार को दो भागों में विभक्त करता है। जिसको pulmonary व Systemic कहते हैं। परन्तु वेद एक Systemic रक्त संचार को ही मानता है जिसके अनुसार रक्त अपने घर-हृदय-को छोडकर इधर उधर की सडकों (शरीर की नस नाडियों) पर मंडराता है। परंतु pulmonary रक्तसंचार में रक्त जिन PULM Capillaries में बहता है उनको वैदिक वर्णन हृदय का ही अंग मानता है। वह उनमें बहता हुआ भी हृदय से बाहर नहीं है। अतः उसको रक्त संचार नहीं माना है। जैसे कि घर में चलते, फिरते आदमीको कोई यह नहीं कहता है कि वह चल रहा है। उसी प्रकार Pulmonary खून रहता है तब वह भी चलता फिरता नहीं माना जाता है। यद्यपि वह गति अवश्य करता है। इस मंत्र मे ' अस्य ' शब्द का प्रयोग इसी दृष्टि से किया गया है। 'अस्य' शब्दका दुबारा प्रयोग कर यही बताया गया है कि प्रतीत दो होते है पर वास्तव में एक ही हैं। यदि Pulmonary व Systemic दो रक्त-संचार किया मानी जायेगी तो फिर Controlling शक्ति भी दो माननी पडेगी। उस अवस्था में महादेव व वृषभ नामक दो हृदय मानने होगे। तब वैदिक " बद्ध " इसके विरोध में जाता है। हृत् व हृदय दो शब्द जो हृदय के लिये प्रयोग किये जाते हैं उसमें हृत् हृदय की Pulmonry capillariesका ही उल्लेख करता है। हृञ्-हरणे. धातु से हृत् शब्द बनता है, जो रक्त की अशुद्धता को हरता है वह हृत् है। इसकी इतनी विस्तृत व्याख्या करने का कारण इतना ही है कि वेदके वर्णन का प्रकार आधुनिक वर्णन के प्रकार से अधिक उत्कृष्ट है तथा सुसंगत है।

अब हम आपको यह बतलायेंगे कि रक्त संचार का क्या मार्ग है।

रक्त का भण्डार वृषभ है। वह पाद द्वारा दान करता है। महादेव जी काल के स्वरूप हैं। इधर उधर घूमते हुए रक्त को मारकर पीजाते हैं। इन वृषभ व महादेव को इनके सेवक-शीर्ष-रक्त हाजिर करते हैं। यह महादेव का शीर्ष पाद द्वारा रक्त इकट्ठा करता है। ये हाथ रक्त का आदान प्रदान करते हैं। इस प्रकार वृषभ के नौकर मालिक की सेवामें उपस्थित करने के लिये फिर अपने पास भण्डार में इकट्ठा कर लेते हैं। यही रक्त का भण्डार है जहां से लेकर वृषभ दान करता है बरसाता है।

इसीको हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं:—

रक्त चलना प्रारम्भ करता है वृषभसे —> पाद—> शरीर —> पाद —> शीर्ष —> महादेव —> हस्तासः —> शीर्ष —> वृषभ। आधुनिक रक्तसंचार की क्रियाको वेदके आधार से लिखें तो निम्न प्रकार होगा:-

Left Ventricle —> AORTA —> system of the body —> Vene Cavae —> Right auricle —> Right lentricle —> Pulmonary system —> Left auricle —> Left ventricle

इस प्रकार हमने आपके सामने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि वेद के अनुसार हृदय का स्थान क्या है। हृदय के हिस्से क्या हैं तथा उनका कार्य क्या है। इससे पहले कि हम इस लेख को समाप्त करें। उस कारखाने के सम्बधमें कुछ लिख देना चाहते हैं जहा रक्त शुद्ध होता है।

Pulmonary system में pulmonary artery, Capallries और veins हैं। चित्र सं २ में आर्टरी ओर वेन तो दिखलाये गये हैं परन्तु केपिलरीज नहीं दीखती हैं। इन केपिलरीज के लिये उपयुक्त शब्द अंगुलियाँ हो सकती हैं। वेद ने क्योंकि हात शब्द का प्रयोग किया है; अतः अंगुलियोंका उससे ग्रहण होता ही है

महादेव से रक्त P. A में जाता है। जैसे हाथ अन्तमें छोटी २ अंगुलियोंमें फट जाता है। ये P. A. भी छोटे P. C में फट जाता है। यहां पर रक्त इतने छोटे २ बूंदों द्वारा जालमें फंस जाता है कि वह खुला होनेपर भी गिरता नहीं। यहां मनुष्य जब श्वास लेता है, तब शुद्ध वायु का इससे समागम होता है। जब मनुष्य हंसता है तब क्या होता है? बन्द मुंह खुल जाता है। और वह बाहर के वायु मंडल से संयोग करता है। इसी तरह रक्त यहां Pulmonary में Capallries मे आकर हवा से समागम करता है यहां आकर P. A. और P. V. हंसती हैं उसके अनन्तर वे Capallries के रूप में फैल जाती है। जब रक्त यहा केपेलिरीज में फैलता है तभी बाह्य हवा अन्दर जाकर इससे

समागम करती है । इस समागम के अनन्तर वह उज्वल शुद्ध हो जाता है । फिर वह शुद्ध रक्त Pulnronary vein में दानार्थ चला जाता है । इस प्रकार वेद बतलाता है कि रक्तशाद्रि अंगुलियों Capallirics में होती हैं ।

अगला प्रश्न पैदा होता है कि यह गति किस प्रकार उत्पन्न होती है । शृंग शब्द की व्याख्या करते हुए हमने यह लिखा था कि ये मार मार कर गति प्रदान करते हैं । इससे यह प्रतीत होता है कि इन cusps में एक प्रकार की क्रिया है जिससे वह वृषभ में होनेवाले खून को दबाता है । वह दबाव आगे चलकर दक्षिण क्षेपक कोष्ठ या महादेव पर होनेवाले cusps को हिलाता है । यह थोडी सी गति उस प्रथम वृषभ वाली गति को कंट्रोल करने के लिये पर्याप्त है । जिस प्रकार आज कल ऑटोमेटिक घडियाँ बन गई हैं, जो हिलने मात्र से चाबी को समाप्त होने से बचाती है, इसी प्रकार की कुछ क्रिया जो हमारे दैनिक व्यवहार में हिलने जुलने से उत्पन्न होती है, उन वृषभ के शृंगों (cusps) को निरन्तर गति में रखने के लिये पर्याप्त है । जैसे ऑटोमेटिक घडियाँ रखी रह जाने पर ३०—४० घंटों के पश्चात बन्द हो जाती हैं, उसी प्रकार जब भी हृदय के इन शृंगों को वह विशेष झटका प्राप्त नहीं होता है वह भी बन्द हो जाता है इससे आप यदि ' Heart fail होने को " समझना चाहें तो समझ सकते हैं । यदि वह क्रिया हम उत्पन्न कर सकें तो मुझे विश्वास है कि हम Heart failure के मृत रोगियों को ठीक करने का दावा कर सकें ।

हृदय का शब्द– हृदय में जो शब्द होता है वह भी वेद के अनुसार वृषभ में ही होता है । जिसका कारण भी शृंगों के कारण cusps जो झटके से खुलते हैं, रक्त के आने-जाने के साथ २, उससे ही होता है । दूसरा हलका सा शब्द या तो प्रथम शब्द की हृदय में गूंज हो सकती है अथवा महादेव के cusps से उत्पन्न हुआ-हुआ हो । इसके साथ --साथ हृदय के सिकुडने व फैलने से जो यह अपने--आधार-- से टक्कर खाता है उसका भी होना सम्भव है ।

हम आपसे पूछते हैं कि वेद कहा अनर्थक तथा निरर्थक है । जब वेद-मंत्र को न समझ सकें तो उसको निरर्थक न कहकर यदि उस पर कलम न उठाई जावे तो शायद हमारी दृष्टि में एक वेद की अधिक सेवा होगी, वेद चाहता है षडङ्ग अध्ययन, बिना उसके जाने वेद नहीं पढा जा सकता । यह निश्चित मानिये ।

भारतीय कालगणना

लेखक- श्री दामोदर मोरेश्वर भट, मिरज

" अब सरकारको चाहिये कि वह पुराने अंग्रेजी (ईसवी सन् के) कॅलेंडर (कालगणना) को छोड दे और नवीन एवं देशी कालगणना आरम्भ करे ।"

देशी सौर कालगणना की मान्यता

ईसवी सन् की विदेशी पद्धति का परित्याग करके उसके स्थानपर देशी पंचाङ्ग पद्धतिके रहते हुए सौर पद्धति किसलिये ? इस प्रश्नका उत्तर अति सरल है । विदेशी ईसवी सन् के जारी रहते समय पंचाङ्गोंका प्रचलन था ही । उनके प्रचलित रहने के जो बलवत्तर कारण थे वे सौर गणना जारी करनेपर भी ज्योंके त्यों रहेंगे ही। क्योंकि ईसवी सन्के स्थान पर यही सौर गणना प्रचलित होनेवाली है । यह कॅलेण्डरके समान ही तारीख, महीना, शक इत्यादि का निर्देश करेगी, किन्तु पक्ष, तिथि, नक्षत्र, योग, करण आदि मनुष्योंके धर्मकर्मोंसे अत्यन्त निगडित उपादानोंका स्पष्टीकरण नहीं दिखा सकेगी । जो सौर पद्धति आज प्रस्तुत की जारही है उसका मुख्य हेतु वास्तवमें यह है भी नहीं ।

सौर पद्धतिका अवलम्बन करनेके मुख्य कारण

१– संसारके बहुत बडे भागपर वही रूढ है । हमारी कालगणना यावच्छक्य उसीसे मिलती जुलती होनी चाहिये । २– हमारे देशमें पहले सौरगणना पद्धति थी। आज भी पंजाब, बंगाल, आसाम, उडिसा और मलबारसे लेकर कन्या कुमारी, तिनवल्ली जिला, उत्तर और दक्षिणीय प्रान्तोंमें वह जारी है । ईसवी सन्से पूर्व सूर, फसली आदि इस्लामी सौर गणनाका उपयोग हम किया करते थे । चन्द्रमान पद्धति सौर पद्धतिके साथ अधिकमासकी गणना द्वारा मिलाकर बराबर कर ली जाती है । अतः सरकार मान्यताके कारण रूढ होनेवाली स्वीय सौर कालगणना लोकप्रिय होगी तथा जनता को वह प्रिय भी लगेगी साथ ही सुलभ भी, क्योंकि उसमें तिथिके क्षयवृद्धिकी दिक्कत नहीं है । (३) उत्तर एवं दक्षिणभारतमें प्रचलित पंचाङ्गोंका अस्तित्व तो रहेगा ही ' सरकारको उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये ' ऐसा हमारा निश्चित मत है । (४) जनताके लेनदेनके व्यवहार, सारे पत्रव्यवहार, बैंकों और व्यापारियोंके दैनिक व्यवहार, सरकारी पत्रव्यवहार तथा परराष्ट्रसे होनेवाला पत्र व्यवहार व इकरार नामे इत्यादिके लिये यह सौर मान बहुत उपयोगी एवं व्यवहारसुलभ सिद्ध होगा। अतः इस योजना के लिये हम नाम भी ' भारतीय कालदर्श ' या ' कालादर्श ' जो कि कॅलेंडरसे ध्वनिसाम्य भी है- सुझानेवाले हैं ।

भारतीय कालादर्शके आन्तर कालविभाग

कलाकाष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्ताश्च दिनादि च। अर्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ १ ॥ ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि । एवं कालविभागेन कालचक्र प्रवर्तते।। २ ॥ विराट ५२ १ व २

इनमेंसे कालकाष्ठा इ० के बदले घण्टे, मिनिट, सेकंद, दिन, वार मिति, महीन, ऋतु और, अयन, संवत्सर, संवत्सर की वर्ष संख्या इस प्रकार दस उपकाल विभागोंका विचार क्रमसे प्रस्तुत करते हैं ।

दिन ' उदयात् उदयं वारः ' मिति ।

एक सूर्योदयसे लेकर अगले प्रथम सूर्योदयके बीच के कालको वार या मिति संज्ञा दी जाएगी । इसके अन्तर्गत सेकंद, मिनिट, घण्टे अथवा विपल, पल, घटिका होंगी। इनमेंसे यन्त्ररचनाके कारण सेकंद, मिनिट घण्टे आदिका प्रमाण व्यवहार्य माना जाएगा। $२\frac{१}{२}$ पल = १ मिनिट, २४ मिनिट = १ घटका, $२\frac{१}{२}$ घटका = १घण्टा, २४ घण्टेका एक दिन। इसी प्रकार रात्रिका भी समझना चाहिए । सूर्योदय होते ही दिनका आरम्भ हो और वह अगले उदयतक माना जावे। यह है सौर मासका मूल स्थूल घटक । क्रमसे जो आते रहेंगे वे सात वार गिन लिये जांय। तारीखके बदले उन्हें मिति समझा जावे । उदाहरणार्थः- रविवार मिति १, सोमवार मिति २ इत्यादि ।

मास, महिना और ऋतु

चन्द्रकी गतिके अनुसार गिनाजानेवाला चान्द्रमास कहाता है । सूर्यकी एक राशि (खगोलका १२ वा भाग) को

पूर्ण होनेमें जो समय लगता है वह सौरमास कहा जाता है। चान्द्रमास २९॥ दिनोंका होता है। सौरमास लगभग ३०॥ दिनोंका होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि– चन्द्र २९॥ दिनोंमें पृथ्वीके चारों ओर अपनी एक प्रदक्षिणा समाप्त करता है और सूर्य लगभग ३०॥ दिनोंमें- अर्थात्, वस्तुतः पृथ्वी ही उतने समयमें -सूर्यके चारों ओर की प्रदक्षिणाके मार्गपर स्थित एक राशि यानि $\frac{1}{12}$ भाग गमन करता है। इस कारण चन्द्रका एक महीना (पंचाङ्गमें- उल्लिखित) एक बार ३० दिनोंका, एक बार केवल २९ दिनोंका होता है। इस प्रकार चन्द्रके १२ फेरे- १२ महीने होनेमें ३५४ दिन लग जाते हैं। पृथ्वी की सूर्यके चारों ओर एक प्रदक्षिणाका अर्थ है सूर्यकी प्रतीयमान १२ राशियोंमें से एक परिक्रमा। कभी ३० तो कभी ३१ दिनोंमें १ राशि अर्थात् कॅलेंडर में निर्दिष्ट सौरमास, इस प्रमाणसे ३६५ होते हैं। इनमें की $\frac{1}{4}$ दिनोंकी बाकी चार वर्षों के बाद एक दिन अधिक मानकर पूरी करलेनी पडती है। तब भी त्रुटि बढती ही जाती है। उसे ठीक करनेकी दृष्टिसे चारसौ वर्षोंमें ३ दिन कम करनेके लिये बीचके तीन शलमित वर्ष, जैसे १, २, ३। ५, ६, ७। ९, १०, ११। इत्यादि शतकोंके वर्षोंमें प्रति चौथेवर्ष आनेवाला बढता दिन निकाल दिया जाता है

आधुनिक कॅलेण्डरों के महीने– जनवरी ३१, फरवरी २८, मार्च ३१, एप्रिल ३०, मई ३१, जून ३०, जुलै ३१, अगस्त ३१, सितंबर ३०, अक्टूबर ३१, नवंबर ३०, और दिसंबर ३१ इस प्रकार मिलकर १ वर्ष के ३६५ दिन माने जाते हैं। प्रत्येक चौथे वर्ष तथा प्रत्येक चारसौ संख्याकवर्षको फरवरीके २९ दिन मानकर उस वर्ष के ३६६ दिन मानने पडते हैं। थोडेसे विचार के पश्चात् पाठकोंकी समझमें यह आजाएगा कि सितंबर से लेकर दिसंबरके अन्ततकके चार महीने अनुक्रम ७, ८, ९, १० संख्याके वाचक होते हुए उन्हें आज ९, १०, ११, १२ वे महीनोंका वाचक बनना पड रहा है! अर्थात् उनका अनुक्रम अथवा पदवी (दर्जा) घसर गया है !! जुलै और अगस्त ये नाम रोमन सम्राटोंके स्मारक ही हैं। इन्हे लोकतन्त्र भारतीय शासन पद्धति में क्योंकर स्थान दिया जाय ? इस अंग्रेजी कॅलेण्डरकी मास दिनोंकी विचित्र गणना, महीनों के गलत स्थान और साम्राज्यशाहीका वास यह सब टालनेके लिये हम निम्नाङ्कित योजना प्रस्तुत करते हैं। १ मार्च Go on आगे चलो, यह प्रथम मास, इसके बाद क्रमशः २-एप्रिल, ३ -मे, ४ -जून, ५-जुलै, ६-अगस्त ७- सितंबर, ८-अक्टूबर, ९ -नवंबर, १० -दिसंबर, ११- जनवरी, १२ फरवरी।

भारतीय कालंदर्श

महीनोंका क्रम इस प्रकार रहेगा– १ मधु, २ माधव, (वसंत ऋतु); ३ शुक, ४ शुचि, (ग्रीष्म); ५ नभ, ६ नभस्य, (वर्षा); ७ इष, ८ ऊर्ज, (शरत्); ९ सह, १० सहस्य, (हेमंत), ११ तपस्, १२ तपस्य, (शिशिर); ये सौर मासके नाम ऋतुओंके अनुसरणपर (जोडी जोडीसे) वैदिक कालसे हैं। पुराणोंमें 'अध्यात्मरामायण' के अन्दर 'मधु', मासे सिते पक्षे० इत्यादि श्लोकमें रामजन्म 'मधु' मासमें हुआ, ऐसा उल्लेख है। वे ही ये महिने हैं। इन मास वाचक शब्दोंके अर्थ भी बडे मजेदार, उत्साहवर्धक, मनमें धैर्य उल्लास और आह्लाद उत्पन्न करनेवाले भी हैं, देखिये–'मधु' कितना मीठा अर्थ है मानो सचमुचही शहद हो और फिर वह आता भी है तो वसन्तऋतु का मीठा सन्देश लेकर। उसके पीछे पीछेही उसका भाई रहता है 'माधव'।' शुक्र'' शुचि' एक का अर्थ तेज और दूसरेका पवित्रता। इसी प्रकार शेष आठों महीनोंके अर्थ हैं। जिज्ञासू इन्हें कोषमें देख सकते हैं। इनमेंसे मधु आदि नभस्यान्त पहले छः महीने ३१ दिनोंके, 'इष' से लेकर 'तपस्य' तकके छः मेंसे पहले पांच महीनों के ३० दिनोंके और अन्तका तपस्य २९ दिनोंका। इस प्रकार भारतीय सौर वर्ष के नित्य दिन ३१×६+३०×५+२९×१= ३६५; तथा नैमित्तिक प्रति चतुर्थ वर्ष एवं प्रति चतुर्थ शतकका वर्ष ३६६ दिनोंका होगा। उन वर्षों में तपस्य महीना ३० दिनों का गिनना चाहिये। अंग्रेजी महीनोंके अनुक्रमसे (मार्च आदि महीनोंके अनुसार) भारतीय 'मधु' आदि महीने क्रमशः लेने हैं। उसमें सूक्ष्म विवेचन अपेक्षित है, जिसे हम अगले प्रकरणमें स्पष्ट करेंगे।

वर्षा का प्रारम्भ कबसे माना जावे ?

'साक्षादेव संवत्सरमारभ्य दृक्षिन्ते फल्गुनी पूर्ण-

मासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत्संवत्सरस्य. ..... ।
चित्रापूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत्संवत्सरस्य...।
(७ ·८४) तैत्तिरीय संहिता ।

ज्ञानकोष, ज्योतिष् शास्त्रका इतिहास । पृष्ठ २८७ । तिलक पंचाङ्ग में फरवरीके १९ या क्वचित् २० तारीख के लगभग (टिप्पणीके अन्तर्गत) 'वसन्ते मधुमासारम्भः'। असुक घटि, पल आदि छपा रहता है । सोलापूर-दाते-पंचाङ्गमें 'मीनाऽयनम्' ऐसा उसी तारीखको छापते हैं। इसका अर्थ हुआ -उस दिन सूर्यने अयन अर्थात् गमन किया, सारांश यह कि उस दिन मीनका सक्रमण किया। यह सायन पद्धतिका अद्यावत्, सूक्ष्म, गणित सिद्ध मीन राशिमें सूर्यप्रवेशका कालकथन है । तिलक पंचाङ्गमें मार्च की ९-१० तारीखोंके आस पास 'मीनार्क' इस शब्द की टिप्पणी सूर्यके मीन-संक्रमण कालका निर्देश करती है। यह विशुद्ध निरयन पद्धतिकी संक्रान्ति हुई। ग्रहलाघवीय पंचाङ्गमें मार्चके १३ । १४ के आसपास यह मीन संक्रमण 'मीनेऽर्कः' इस शब्द द्वारा सूचित किया हुआ दिखाई देगा । किन्तु इन तीनोंमें-**सायन संक्रमण सूक्ष्मतः सर्वथा अचूक है और यह बात सर्वसम्मत है।** परन्तु यह मीन संक्रमण (१) माघवद्य ८ घ. ३९ पल १५ अर्थात् माघ व ९ को स्पष्ट, (२) फाल्गुन शु. १३ घ. ४७ प ५८ अर्थात् फा शु. १४ को स्पष्ट एवं (३) फा. व. २ घ. ४९ प. १० अर्थात् फाल्गुनवद्य ३ को स्पष्ट लागू होगा। ऐसा शक १९७३ के पंचाङ्गमें दिया हुआ स्पष्टतः मिलेगा। यही अवस्था १२ हों संक्रान्तियोंकी है ।

आजके सुशिक्षित एवं संस्कारवान लोगोंको उत्तरायण और दक्षिणायनका ज्ञान सामान्यतः रहता है । गीताके १८ वें अध्यायमें भी इनका उल्लेख है। उत्तरायण सूर्यके मकर संक्रमणके अवसर पर होता है तथा दक्षिणायन सूर्यके कर्क संक्रमणसे होता है । इनके अतिरिक्त और दो अयन (इन्हें 'विषुवायन' कहा जाता है) एक मेष संक्रमण होनेपर और दूसरा तुला राशिमें सूर्यका प्रवेश अथवा संक्रमण होनेपर हुआ करता है

१, मेष संक्रमणके समय- दिन और रात समसमान हुआ करते हैं।

२- कर्क संक्रमणके समय-दिन, बहुत बडा और रात बहुत छोटी हुआ करती है ।

३, तुल सक्रमणके समय - दिन, रात पुनः समसमान होते हैं।

४- मकर संक्रमणके समय दिन लघुतम और रात दीर्घतम होते हैं। इन घटनाओंका अनुभव हम ले सकते हैं।

५-मीन संक्रमणके पश्चात् वसन्तऋतु के सुखद अनुभव हमें प्राप्त होते हैं।

मेष संक्रमण को 'वसन्त संपात' और तुला संक्रमणको 'शरद् संपात' कहते हैं। क्योंकि ये समसमान (दिन-रात्रिके) दिन क्रमशः वसन्त और शरद् ऋतुमेंही आते हैं। इस विवेचनसे यह पूर्णतः स्पष्ट होजाता है कि वर्षारम्भ इनमेंसे एक प्रत्यक्षानुभव करानेवाले दिन ही करना चाहिये ऐसा होनेपर भी आज भारतीय पंचाङ्गके अनुसार उसे दक्षिण की ओर चैत्रमें और उत्तरकी ओर प्रायः कार्तिकमें मानते हैं। क्योंकि ये पंचाङ्ग चान्द्रमानके हैं और चान्द्र महीनेका लक्षण यह है कि उनकी पूर्णिमाके दिन चित्रा कृत्तिका आदि नक्षत्र होने चाहिये। सौर मान ऋतुप्रधान है। उदाहरणार्थ 'वर्षा नभोमासारम्भः' से बरसात होनी चाहिये और हेमन्त ऋतुमें थंडका अनुभव होना चाहिए। तथापि चान्द्रमासमें ऋतुओंकी भूल होजाती है। यह भूल इतनी बडी है कि ३२ चान्द्रमासोंके बाद एक चान्द्रमास अधिक मानकर उसे सुधारना आवश्यक हो जाता है। अस्तु ।

यजुर्वेद के समय और तदुत्तर कालमें 'मधु' को ही वर्षारम्भ मास माना जाता था। और इसीलिये हमारी योजनामें इस प्रकरणके आरम्भ में निर्दिष्ट तैत्तिरीय संहितान्तर्गत 'फल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन्' इत्यादि वचनोंका आधार लेकर उस पूर्णिमा के आसपास आनेवाले 'वसंते मधुः' इस सौरमासको (वर्षारम्भमासका) सम्मानका स्थान दिया है । अर्थात् **मधु महीनेसे वर्षारम्भ मानना चाहिये, ऐसा सुझाया है।**

उसके अन्य कारण (१) माघ शु० ५ को ही 'वसंत' पंचमी मनाई जाती है। (२) माघ शु० १५ को नवान्न भूनकर किसान लोग त्योहार मनाते हैं और शीतऋतुके समाप्तिकी सूचना देते हैं। (३) माघ वद्य १४ शिवरात्रि-को आमोंका मोहोर श्री शंकर को अर्पण करते हैं, वह

एक प्रकार की वसन्त ऋतु की भेंट ही है। (४) फाल्गुनी पूर्णिमाके होलिकोत्सवको कोई वसन्तोत्सव भी कहते हैं। (५) वसन्तऋतु अपनी समृद्धि चैत्रमें भी बिखेरता रहता है। (६) प्रातःकालकी 'गुलाबी थंड' उसके अन्तिम दिन हैं। (७) बंगाल और मलबार की तरफके सौरमास प्रत्यक्ष आचरणमें लानेवाले लोग आजकल मेष संक्रमण होते ही जो महीना चालू होता है उसीको 'सौर वैशाख' कहते हैं। अर्थात् मधु = चैत्र, माधव = वैशाख, शुक्र = ज्येष्ठ, इसी प्रकार आगे मानते जाते हैं।

पूर्णिमापर मास माननेवाले भारतीय आजभी फाल्गुन-वद्य पक्षको चैत्र वद्यपक्ष और चैत्र शुद्ध पक्षको अन्यों के समान चैत्र शुद्ध ही मानते हैं। ऐसाकरनेसे हमारे मधु और चैत्र का मेल जमता है। तथापि हमारी योजनाका मुख्य कटाक्ष-ख्रिस्ती कॅलेंडर के स्थानपर स्वदेशी कालगणना किस प्रकार लाई जासकती है, यह होनेके कारण हम यह विशेष आग्रह करना चाहते हैं कि मेषादि सौर एवं चैत्रादिचान्द्र महीनोंका मेल बैठनाही चाहिये।

महीनोंकी दिन-संख्या की निर्धारणा

पिछले प्रकरणमें आनुषङ्गिकरूपसे महीने, ऋतु और अयनपर पर्याप्तविवेचन होचुका है। तथापि उस विषयमें कुछ और अधिक लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। इसवी सन् के कॅलेण्डरके महीनों के दिन समान न होनेकी शिकायतके साथ दूसरी शिकायत यह है कि उसका वर्षारम्भ अथवा किसी भी मासका प्रारम्भ कोई नैसर्गिक अथवा प्रत्यक्ष घटना नहीं दिखाता। भारतीय चान्द्रमासको लीजिये। उसकी अमावस्या, पूर्णिमा साधारण व्यक्ति भी जानता है। विषुवदिन-समान दिनरात की स्थिति अनुभव की जा सकती है। वसन्तारम्भ तथा शरदारम्भ के लक्षणोंका अनुभव सरलतासे होजाता है तथा बहुत बडा दिन और बहुत बडी रातका भी हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। भारतीय सौरमासारम्भ होनेपर ये घटनायें निश्चितरूपसे अनुभवमें आजायेंगी। तथापि चान्द्रमासका प्रभु, नियन्ता अथवा राजा चन्द्र अथवा सौर मासके स्वामी, अधिपति एवं सृष्टि नियन्ता महाराजाधिराज सूर्य महाराजकी गति हमारे अर्थात् मानवोंके गणितानुसार (फिर वह सादा, दशांश अथवा द्वादशांशमें से किसी भी पद्धतिका क्यों न हो) बिल्कुल ठीकठीक विभागोंमें नहीं बिठाई जा सकती। हमारी ग्रहमालाके बुध, शुक्र, हमारी धरित्रीमाता-पृथ्वी, उसका पुत्र मंगल, गुरु, शनि, और उनके परे के वे सभी ग्रह बडे लहरी हैं। उन सबकी गतियोंका मेल जमाकर एक आकाशस्थ बिन्दु पर वे कब केन्द्रित होंगे ? इसका निश्चय करनेके लिये कितना गणित करना पडता है और शास्त्रज्ञोंको कितना श्रम होता है !!! किन्तु हम मानवोंको उन्हींकी लहरी वृत्तिका अनुगामी बनना पडता है, दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। 'देवताछन्देनैव वर्तितव्यम् नान्य पन्था विद्यते' शुक्राचार्यने श्रीमद् भागवतमें - 'न देवचरितं चरेत्' जो कहा है वह किसी दूसरे दृष्टिकोणसे कहा है। प्रस्तुत अवसरपर तो ऐसा कहना उपयुक्त जान पडता है कि इन ग्रहोंके समान हम मानवोंको विचित्र व्यवहार न करना चाहिए। यावच्छक्य नियमित रूपसे ही बर्तना चाहिए।

कहनेका सारांश यह है कि घटिका, पल आदिसे निर्दिष्ट सूर्यसंक्रान्त अर्थात् सौरमासभी २९। ३०। ३१ अथवा ३२दिनों के होते हैं। परन्तु वसन्तारम्भसे लेकर शरदारम्भ १८६ दिनोंका तथा शरद्से लेकर वसन्तागमन १७९ दिनोंका होता है। इसीप्रकार मेषायन एवं तुलायन सामान्यतः अनुक्रमसे १८६ तथा १७९ दिनोंके अन्तरसे आता है। शक १८६९से शक १८७३ तक के पांच पंचाङ्गोंमें (तिलक) मकरसे अर्थात् उत्तरायणसे दक्षिणायन तक १८१ दिन तथा दक्षिणायन से उदगयन तक १८४ दिन होते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। समस्त संक्रान्तियाँ घटका-पलोंसे बंधी होनेके कारण भारतीय सौरवर्ष गणनामें प्रतिचौथे वर्ष उड्डाण (Ieap) की अथवा एक दिन अधिक माननेकी पद्धति है। भारतीय कालंदर्शमें सुविधाकी दृष्टिसे इसी पद्धतिको हमने स्वीकार किया है। इसे व्यावहारिक स्थिति कहा जा सकता है।

हमारा कालंदर्श अर्थात् कॅलेंडर कैसा होगा ?

अब हम शक १८७२-७३ स. तथा ईसवी सन् १९५१-५२ से सम्बन्धित एक सौर वर्षका सम्पूर्ण कालादर्श कोष्टक रूपमें चित्रित करके दिखलाते हैं। वर्षारम्भ तथा मासारम्भ मीन सं. घ. २४ प. ५२। इस दिन संक्रान्त सूर्यास्त से पूर्व $1\frac{1}{2}$ घण्टेकी रही।

भारतीय कालगणना

वसंत ऋ.		मधुमास.		मीनेऽर्कः	वसंत.		माधव		मेषार्कः
ख्रिस्ती	ता.	सौर	मिति.	चांद्र०	खि.	ता.	सौर	मिति.	चांद्र०
फेब्रु०	१९	सोम.	१		मार्च०	२२	गुरु.	१	फा. शु. १४ हुताशनि
,,	२०	मंगळ.	२		,,	२३	शुक्र.	२	गुड फ्रायडे.
,,	२१	बुध.	३	माघ० १५	,,	२४	शनि.	३	
,,	२२	गुरु.	४		,,	२५	रवि.	४	तुका.बीज छ. चि. ज.
,,	२३	शुक्र.	५		,,	२६	सोम.	५	फा. कृ. ४ संकष्टी
,,	२४	शनि.	६		,,	२७	मंगळ.	६	फा. व. ५ रंगपंचमी
,,	२५	रवि.	७	मा. कृ. सं ४	,,	२८	बुध.	७	
,,	२६	सोम.	८		,,	२९	गुरु.	८	
,,	२७	मंगळ.	९		,,	३०	शुक्र.	९	फा व. ८
फेब्रु०	२८	बुध.	१०		मार्च	३१	शनि	१०	
मार्च०	१	गुरु.	११	माघ कृ. ८	एप्रिल.	१	रवि.	११	
,,	२	शुक्र.	१२	रामदास ९	,,	२	सोम.	१२	फा. व. ११
,,	३	शनि.	१३		,,	३	मंगळ.	१३	
,,	४	रवि.	१४	माघ कृ. ११	,,	४	बुध.	१४	
,,	५	सोम.	१५		,,	५	गुरु.	१५	
,,	६	मंगळ.	१६		,,	६	शुक्र	१६	फा. कृ. ३०
,,	७	बुध.	१७	माघ. कृ. ३०	,,	७	शनि.	१७	१८७३चै.शु.१पाडवा.
,,	८	गुरु.	१८		,,	८	रवि.	१८	
,,	९	शुक्र.	१९		,,	९	सोम.	१९	
,,	१०	शनि.	२०		,,	१०	मंगळ.	२०	
,,	११	रवि.	२१		,,	११	बुध.	२१	
,,	१२	सोम.	२२		,,	१२	गुरु.	२२	
,,	१३	मगळ,	२३		,,	१३	शुक्र.	२३	
,,	१४	बुध.	२४		,,	१४	शनि.	२४	
,,	१५	गुरु.	२५	फा. शु. ८	,,	१५	रवि.	२५	चैत्र शु. ८ रामजन्म
,,	१६	शुक्र.	२६		,,	१६	सोम.	२६	
,,	१७	शनि.	२७		,,	१७	मंगळ.	२७	
,,	१८	रवि.	२८		,,	१८	बुध.	२८	चै. शु. ११
,,	१९	सोम.	२९	फा. शु. ११	,,	१९	गुरु	२९	
,,	२०	मंगळ.	३०		,	२०	शुक्र.	३०	भीष्मेशुक्रः $\frac{५१}{२९}$
मार्च	२१	बुध.	३१	व.माधव.२३।७	एप्रिल	२१	शनि	३१	चै.शु. १५ हनुमज्जयंती

ग्रीष्मऋतु.		शुक्रमास.		वृषभार्कः	ग्रीष्मऋतु.		शुचिमास.		मिथुनार्कः
ख्रिस्ति	ता.	सौर	मिति.	चांद्र तिथि.	ख्रि.	ता.	सौर	मिति	चांद्र तिथि
एप्रिल.	२२	रवि	१		मे.	२३	बुध.	१	
,,	२३	सोम.	२		,,	२४	गुरु.	२	वै.कृ.४संकष्टी.
,,	२४	मंगळ.	३	चैत्र. कृ. ४ अं. सं.	,,	२५	शुक्र.	३	
,,	२५	बुध.	४		,,	२६	शनि.	४	
,,	२६	गुरु.	५		,,	२७	रवि.	५	वै.कृ. ८
,,	२७	शुक्र.	६		,,	२८	सोम.	६	
,,	२८	शनि.	७	चैत्र. कृ ८	,,	२९	मंगळ.	७	
,,	२९	रवि.	८		,,	३०	बुध.	८	
एप्रिल	३०	सोम.	९		मे	३१	गुरु.	९	वै.कृ ११
मे.	१	मंगळ.	१०	चै. कृ. ११	जून	१	शुक्र.	१०	
,,	२	बुध.	११		,,	२	शनि.	११	
,,	३	गुरु.	१२		,,	३	रवि.	१२	
,,	४	शुक्र.	१३		,,	४	सोम.	१३	वै.कृ. ३० सोमवती
,,	५	शनि.	१४		,,	५	मंगळ.	१४	ज्येष्ठ शु. १दशहराप्रा.
,,	६	रवि.	१५	चैत्र. व. ३०	,,	६	बुध.	१५	
,,	७	सोम.	१६		,,	७	गुरु.	१६	
,,	८	मंगळ.	१७		,,	८	शुक्र.	१७	
,,	९	बुध.	१८	वैशाख शु. ३ अक्षय ३	,,	९	शनि.	१८	
,,	१०	गुरु.	१९		,,	१०	रवि.	१९	
,,	११	शुक्र.	२०		,,	११	सोम.	२०	
,,	१२	शनि.	२१		,,	१२	मंगळ	२१	
,,	१३	रवि.	२२		,,	१३	बुध.	२२	ज्येष्ठ शु. ८
,,	१४	सोम.	२३	वै. शु ८	,,	१४	गुरु.	२३	
,,	१५	मंगळ.	२४		,,	१५	शुक्र.	२४	ज्येष्ठ शु ११ स्मार्त
,,	१६	बुध.	२५	वैशाख शु. १० शकराचार्य ज.	,,	१६	शनि.	२५	भागवत ११
,,	१७	गुरु.	२६	वैशाख शु ११	,,	१७	रवि.	२६	वट सावित्री व्रतारंभ.
,,	१८	शुक्र.	२७		,,	१८	सोम.	२७	
,,	१९	शनि.	२८	वै. शु. १३ नृसिंह ज.	,,	१९	मंगळ.	२८	ज्ये. शु. १५ वट
,,	२०	रवि.	२९		,,	२०	बुध.	२९	
,,	२१	सोम.	३०	वै. शु. १५ ग्रीष्मे शुचि. ५०।१५	,,	२१	गुरु.	३०	
मे	२२	मंगळ.	३१		जून	२२	शुक्र.	३१	वर्षा नभः दक्षिणायन व १० प ३९

वर्षाऋतु.		नभोमास		कर्काऽर्क
ख्रिस्ति	ता.	सौर	मिति	चांद्र तिथि
जून.	२३	शनि	१	
,,	२४	रवि.	२	
,,	२५	सोम.	३	
,,	२६	मंगळ.	४	ज्येष्ठ कृ ८
,,	२७	बुध.	५	
,,	२८	गुरु.	६	
,,	२९	शुक्र.	७	ज्येष्ठ कृ ११
जून	३०	शनि.	८	
जुलै.	१	रवि.	९	
,,	२	सोम.	१०	
,,	३	मंगळ.	११	
,,	४	बुध.	१२	ज्येष्ठ कृ. ३०
,,	५	गुरु.	१३	
,,	६	शुक्र.	१४	
,,	७	शनि.	१५	
,,	८	रवि.	१६	
,,	९	सोम.	१७	
,,	१०	मंगळ.	१८	
,,	११	बुध.	१९	
,,	१२	गुरु.	२०	आषाढ शु. ८
,,	१३	शुक्र.	२१	
,,	१४	शनि.	२२	
,,	१५	रवि.	२३	आषाढ शु ११ चातुर्मासारंभ
,,	१६	सोम.	२४	
,,	१७	मंगळ	२५	
,,	१८	बुध.	२६	आषाढ. शु. १५ गुरु. १५
,,	१९	गुरु.	२७	
,,	२०	शुक्र.	२८	
,,	२१	शनि.	२९	आ. व. ४ संकष्टी.
,,	२२	रवि.	३०	
जुलै	२३	सोम.	३१	वर्षानभस्य घ. ३७ प. ५२

वर्षाऋतु.		नभस्य मास.		सिंहार्कः
ख्रिस्ति.	ता.	सौर	मिति	चांद्र तिथि.
जुलै	२४	मंगळ.	१	आषाढ कृ. ६ लो० टिळक ज.
,,	२५	बुध	२	आ. कृ. ८
,,	२६	गुरु.	३	
,,	२७	शुक्र.	४	
,,	२८	शनि	५	
,,	२९	रवि.	६	आ. कृ. ११ आळंदी यात्रा.
,,	३०	सोम.	७	
जुलै	३१	मंगळ.	८	
ऑगस्ट.	१	बुध.	९	टिळक पुण्य.
	२	गुरु.	१०	आ व. ३० दीपपूजा
,,	३	शुक्र.	११	
,,	४	शनि.	१२	
,,	५	रवि	१३	
,,	६	सोम	१४	
,,	७	मंगळ	१५	
,,	८	बुध.	१६	श्रा. शु. ५ नागपंचमी
,,	९	गुरु.	१७	
,,	१०	शुक्र.	१८	श्रा. शु ८
,,	११	शनि.	१९	
,,	१२	रवि	२०	
,,	१३	सोम	२१	श्रा. शु. ११
,,	१४	मंगळ.	२२	
,,	१५	बुध.	२३	स्वातंत्र्यदिनोत्सव.
,,	१६	गुरु.	२४	श्रा. शु १५ नारळी र बं.श्रावणी
,,	१७	शुक्र	२५	
,,	१८	शनि.	२६	
,,	१९	रवि	२७	
,,	२०	सोम.	२८	श्रा. कृ. ४ संकष्टी.
,,	२१	मंगळ.	२९	
,,	२२	बुध.	३०	
ऑगस्ट	२३	गुरु.	३१	शरदिइषमास. घ. ५५ प.५

शरदऋतु		इष मास		कन्यार्कः	शरद ऋतु.		ऊर्जमास		तुलाऽर्कः
खि	ता.	सौर	मिति	चाद्रतिथि.	खि.	ता.	सौर	मिति	चाद्र तिथि.
ऑगस्ट	२४	शुक्र.	१	श्रा. कृ. ८ कृष्णजन्म.	सप्टंबर.	२३	रवि	१	भा. व ८ शरदि ऊर्जे ४८।२३
,,	२५	शनि.	२		,,	२४	सो.	२	अविधवा ९
,,	२६	रवि.	३		,,	२५	मं	३	
,,	२७	सो	४		,,	२६	बु	४	भा व ११स्मार्त.
,,	२८	मं	५	श्रा. कृ. ११	,,	२७	गु.	५	भागवत ११
,,	२९	बु	६		,,	२८	शु.	६	
,,	३०	गु	७		,,	२९	श	७	
ऑगस्ट	३१	शु.	८		सप्टंबर	३०	र.	८	सर्वपित्रि. ३०
सप्टंबर	१	श.	९	भा. कृ. ३० पिठोरी।	ऑक्टोबर.	१	सो.	९	सोमवती घटस्थापना
,,	२	र	१०		,,	२	मं	१०	गांधी जयंती
,,	३	सो.	११		,,	३	बु	११	
,,	४	मं.	१२	हरितालिका	,,	४	गु.	१२	
,,	५	बु.	१३	गणेश ४	,,	५	शु.	१३	
,,	६	गु.	१४	ऋषि ५	,,	६	श	१४	
,,	७	शु.	१५		,,	७	र	१५	महालक्ष्मी. ८
,,	८	श.	१६	भा. शु ८ गौरी ८	,,	८	सो.	१६	आ. शु. ८
,,	९	र	१७	भागवत सप्ताह. प्रा.	,,	९	मं	१७	विजया १० दसरा
,,	१०	सो.	१८		,,	१०	बु	१८	
,,	११	मं.	१९	भा. शु. ११	,,	११	गु.	१९	आ. शु. ११
,,	१२	बु.	२०	वामन १२	,,	१२	शु	२०	
,,	१३	गु.	२१		,,	१३	श.	२१	
,,	१४	शु.	२२	अनत १४	,,	१४	र.	२२	कोजागरी नवान्न इष्टि.
,,	१५	शनि	२३	भा.शु.१५भा.स.स.	,,	१५	सो.	२३	
,,	१६	र.	२४		,,	१६	मं.	२४	
,,	१७	सोम.	२५		,,	१७	बु.	२५	
,,	१८	मं	२६	भा व. ४ अं. सं.	,,	१८	गु.	२६	अश्विन कृ. ४ सं.
,,	१९	बु.	२७		,,	१९	शु.	२७	
,,	२०	गु.	२८		,,	२०	श.	२८	
,,	२१	शु.	२९		,,	२१	र.	२९	
सप्टेंबर	२२	शनि.	३०		ऑक्टोबर	२२	सो.	३०	कालाष्टमी.

हेमंत ऋतु.		सहमास.		वृश्चिकार्कः	हेमंत ऋतु.		सहस्यमास.		धनुषिअर्कः
ख्रिस्ति.	ता.	सौर	मिति.	चांद्र तिथि.	ख्रि.	ता	सौर	मिति	चाद्र तिथि
ऑक्टो०	२३	मंगळ.	१		नवंबर.	२२	गुरु.	१	
,,	२४	बुध.	२	हेमंते सहमास घ. १० प. ५१	,,	२३	शुक्र	२	हेमंते सहस्य घ. ३ प. ५८
,,	२५	गुरु.	३		,,	२४	शनि.	३	
,,	२६	शुक्र.	४	आ. कृ. ११	,,	२५	रवि.	४	का कृ. ११
,,	२७	शनि.	५		,,	२६	सोम-	५	
,,	२८	रवि.	६		,,	२७	मंगळ.	६	
,,	२९	सोम.	७	नरक १४	,,	२८	बुध.	७	का. कृ. ३०
,,	३०	मंगळ.	८	आ कृ. ३० केळकर पु.	,,	२९	गुरु.	८	
ऑक्टो०	३१	बुध.	९	बलि १ विक्रम सं.	,,	३०	शुक्र.	९	
नवंबर	१	गुरु.	१०		दिजबर	१	शनि.	१०	
,,	२	शुक्र.	११		,,	२	रवि	११	
,,	३	शनि	१२		,,	३	सोम.	१२	
,,	४	रवि.	१३		,,	४	मगळ.	१३	चंपा ६
,,	५	सोम.	१४		,,	५	बुध.	१४	मा. शु. ८
,,	६	मंगळ.	१५	गोपाष्टमी का शु. ८	,,	६	गुरु.	१५	
,,	७	बुध.	१६		,,	७	शुक्र.	१६	
,,	८	गुरु.	१७		,,	८	शनि.	१७	
,,	९	शुक्र.	१८	कार्तिकी ११ का शु.	,,	९	रवि.	१८	मा. शु. ११ गीता. ज.
,,	१०	शनि.	१९	तुलसी वि.	,,	१०	सोम.	१९	
,,	११	रवि.	२०	वैकुंठ १४	,,	११	मंगळ	२०	
,,	१२	सोम.	२१		,,	१२	बुध.	२१	दत्त जयंती
,,	१३	मंगळ.	२२	त्रिपुरी १५	,,	१३	गुरु.	२२	मा. शु. १५
,,	१४	बुध.	२३		,,	१४	शुक्र.	२३	
,,	१५	गुरु.	२४		,,	१५	शनि.	२४	
,,	१६	शुक्र.	२५		,,	१६	रवि.	२५	
,,	१७	शनि.	२६	का. कृ. ४ संकष्टी	,,	१७	सोम.	२६	मा. कृ ४ संकष्टी
,,	१८	रवि.	२७		,,	१८	मगळ.	२७	
,,	१९	सोम.	२८		,,	१९	बुध	२८	
,,	२०	मंगळ.	२९		,,	२०	गुरु.	२९	
,,	२१	बुध.	३०	का. कृ. ८	,,	२१	शुक्र.	३०	मा. कृ. ८

शिशिरे शिशिर ऋतु.		तपोमासारंभ तपोमास		३६/४६ उदगयनं. मकराऽर्कः	शिशिरे शिशिर ऋतु.		तपस्य मासारंभ. तपस्य मास		घ. ३ प. २३ कुंभेऽर्कः
ख्रिस्ति.	ता.	सौर	मिति	चांद्र तिथि	ख्रिस्त.	ता.	सौर	मिति	चांद्र तिथि.
दिजंबर	२२	शनि.	१		जानेवारी	२१	सोम	१	
,,	२३	रवि.	२		,,	२२	मंगळ.	२	
,,	२४	सोम.	३	मा. कृ ११ स्मार्त	,,	२३	बुध.	३	पौष कृ. ११
,,	२५	मंगळ.	४	मा. कृ ११ भा.	,,	२४	गुरु	४	
,,	२६	बुध.	५		,,	२५	शुक्र.	५	
,,	२७	गुरु.	६		,,	२६	शनि.	६	पौष कृ. ३०
,,	२८	शुक्र.	७	मा. कृ. ३०	,,	२७	रवि.	७	
,,	२९	शनि.	८		,,	२८	सोम.	८	
,,	३०	रवि.	९		,,	२९	मंगळ.	९	
,,	३१	सोम.	१०		,,	३०	बुध.	१०	गणेशजन्म
जानेवारी.१९५२	१	मंगळ.	११		जानेवारी	३१	गुरु.	११	वसंत पंचमी
,,	२	बुध.	१२		फेब्रुवारी	१	शुक्र.	१२	
,,	३	गुरु.	१३		,,	२	शनि.	१३	
,,	४	शुक्र.	१४	पौष शु. ८	,,	३	रवि.	१४	माघ शु ८ भीष्माष्टमी
,,	५	शनि.	१५		,,	४	सोम.	१५	
,,	६	रवि.	१६		,,	५	मंगळ	१६	
,,	७	सोम.	१७	पौ. शु. ११	,,	६	बुध.	१७	मा. शु. ११
,,	८	मंगळ.	१८		,,	७	गुरु	१८	
,,	९	बुध.	१९		,,	८	शुक्र.	१९	
,,	१०	गुरु.	२०		,,	९	शनि.	२०	
,,	११	शुक्र.	२१		,,	१०	रवि	२१	मा. शु. १५ चंद्रग्रहण.
,,	१२	शनि.	२२	पौ. शु. १५ शाकंभरी	,,	११	सोम.	२२	
,,	१३	रवि.	२३		,,	१२	मंगळ.	२३	
,,	१४	सोम.	२४		,,	१३	बुध.	२४	
,,	१५	मंगळ	२५	पौ. कृ ४ अं. सकष्टी	,,	१४	गुरु.	२५	मा. कृ. ४ संकष्टी.
					,,	१५	शुक्र.	२६	
,,	१६	बुध.	२६		,,	१६	शनि.	२७	
,,	१७	गुरु.	२७		,,	१७	रवि.	२८	
,,	१८	शुक्र.	२८		,,	१८	सोम.	२९	मा. कृ. ८
,,	१९	शनि.	२९		,,	१९	मगळ.	३०	वाढावा.
,,	२०-	रवि.	३०	पौ. कृ ८	एकून दि. ३०				वधंते मधु
					या वर्षाचे ३६६ दिवस.				घ.३९ प.१५

वसंत ऋतु		मधुमास		मीनार्कः	वसंत ऋतु.		मधुमास		मीनसंक्र०
खि.	ता.	सौर	मिति	चांद्र तिथि.	खि.	ता	सौर	मिति	चाद्र तिथि.
१९५२फेब्रुवारी	२०	बु.	१		मार्च	६	गु.	१६	
,,	२१	गु	२		,,	७	शु.	१७	
,,	२२	शुक्र	३		,,	८	श.	१८	
,,	२३	शनि.	४		,,	९	र.	१९	
,,	२४	रवि.	५		,,	१०	सो.	२०	
,,	२५	सो.	६		,,	११	मं	२१	
,,	२६	मं	७		,,	१२	बु	२२	
,,	२७	बु	८		,,	१३	गु.	२३	
,,	२८	गु	९		,,	१४	शु	२४	
,,	२९	शु	१०		,,	१५	शनि	२५	
मार्च१९५२	१	श	११		,,	१६	र.	२६	
,,	२	र	१२		,,	१७	सोम.	२७	
,,	३	सो.	१३		,,	१८	म.	२८	
,,	४	मं.	१४		,,	१९	बु.	२९	
,,	५	बु	१५		,,	२०	गु.	३०	वसंते माधव.
					मार्च	२१			घ. ३७ प. ३०
							शु.	३१	

शक १८४७२।७३ अथवा इसवी सन् १९५१।५२ के मधुमासोंकी पहली दस तिथियोंकी बराबरीसे आनेवाली फरवरीकी १० तारीखें एक से बढकर आई हैं। ' लिपइयर ' के एक दिनके बढजानेसे यह परिवर्तन हुआ है।

वर्ष-दिन-गणना पद्धतिकी तुलना

सौरवर्ष अथवा पृथ्वी की सौर प्रदाक्षिणाके लिये लगनेवाले कालके आधेभागको ' अयन ' कहते हैं। परन्तु जब पृथ्वी- अपने परिभ्रमणमें सूर्यके समीप रहती है तब उसकी गति बढ जाती है। (पृथ्वीका यह प्रदक्षिणामार्ग किंचित् लम्बगोल है। लम्बगोलके दो केन्द्र रहते हैं तथा उनमें से एक केन्द्रमें सूर्य रहता है। इस कारण पृथ्वी और सूर्यके बीच का अन्तर न्यूनाधिक हो जाता है। अतः पृथ्वीकी गतिमें यह अन्तर हो जाता है) इस कारण पृथ्वी भ्रमण का प्रथम छः महीने का समय १८६ दिनोंका और दूसरा १६९ दिनोंका होता है। इसे हमने अपने कालंदर्शी में बतानेका यत्न किया है और प्रत्येक छमाहीके महीनोंके दिन समान कर लिये हैं, यह बात कोष्ठक को देखने से स्पष्ट विदित हो जाएगी। अंग्रेजी कॅलेण्डर की अपेक्षा यह रचना निश्चितरूपसे सरल है और महीनों के नाम तो बहुतही सरल हैं, साथ ही उनके युगल रोचक एवं स्मरण सुलभ भी हैं। वर्षके ३६५ दिन १२ महीनोंमें अन्य प्रकारसे भी विभाजित किये जासकते हैं और वे इस प्रकार कि— ३१×५+३०×७ = ३६५ अथवा ३१×७+३०×४+२८ = ३६५ इनका निसर्ग के साथ मेल नहीं बैठता।

पारसियोंके वर्ष भी सौर ही हैं। किन्तु वे ३०×१२+ गाथाके दिन ५ पकडकर ३६५ की भरती करते हैं। फ्रान्स में भी सौरवर्ष ही है। पारसियोंके समान उनकी मास पद्धति ३०+१२ है; परन्तु बारहवें महीनेमें पांच या छः दिन अनुक्रमसे बुद्धि, श्रम, कर्म, फल, मत प्रचार आदि तत्वोंके उत्सवार्थ तथा उड्डाण (Leap) वर्ष में और एक दिन क्रान्त्युत्सवका मानकर ३६५ अथवा ३६६ दिन पूरे करते हैं। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि फ्रेंच क्रान्तिके पश्चात् फ्रान्सके स्वातन्त्र्यप्रेमी लोगोंने पराये ईसाई कॅलेण्डरको (सारे देशमें बडे बडे प्रदर्शन करके)

राष्ट्रीयविधान सभाद्वारा, निकाल फेंकने के लिये विवश कर दिया था और रॅमे (Ramme) नामक फ्रेंच क्रान्तिकारी द्वारा प्रकल्पित उपर्युक्त कालगणनाको बडा उत्सव करके ' क्रान्ति संवत् वर्ष प्रथम ' इस नामसे राज्य विधान सभाद्वारा सम्मत कराके फ्रान्स देशमें रूढ करा लिया । केवल ३५४ की चान्द्रवर्ष-पद्धति और ३६० दिनोंके (३०×१२) वर्षका मोटा प्रमाण अशास्त्रीय अतएव अग्राह्य ही है ।

कतिपय विद्वानोंके मस्तिष्कमें एक और कालमापन घूम रहा है । वह इस प्रकार है– ७ दिनोंका एक सप्ताह, ४ सप्ताहों का एक महीना (२८ दिन) ऐसे १३ महीनों का एक वर्ष । अर्थात् ३६४ दिन+एक दिन पूरक (इस के लिये वार का कोई नाम नहीं) ४ वर्षों के बाद एक बिना नामका पूरक दिन अधिक मानकर ३६५ या ३६६ दिन पूरे किये जाँय । इससे लाभ यह है कि वर्षका आरम्भ एक निश्चित वार को होगा और हानि यह है कि ऋतु या त्रिकाल (गर्मी, वर्षा, सर्दी) अयन, विषुव दिन, दक्षिण उत्तर क्रान्ति यह सब कुछ व्यवहारमें व्यस्त मनुष्योंको बिना अभ्यासके समझमें नहीं आवेगा ।

शक या संवत् का प्रारम्भ और गत-संख्या

स्वराज्यकी नवीन कालगणना की कल्पना उत्स्फूर्त होते ही अनेक विद्वानोंने इस नये शक या संवत् को किस नाम से प्रचलित किया जाय, इस विषयमें अपनी संमतियाँ दीं । किन्तु ऐसा दिखाई पडा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी निष्ठानुसार अपने पक्षमें आधिष्ठित व्यक्तिका ही नाम सुझा रहा है । इन नामोंका विचार करनेपर यह प्रतीत हुआ कि इनमें से कोई भी नाम विक्रम या शालीवाहनके श्रेष्ठत्वको नहीं पहुँच पाता । तथापि विक्रम शालिवाहन के नाम चान्द्रगणनाके लिये सम्प्रति प्रयुक्त होनेके कारण नूतन सौरगणनाके पृथक्त्वको दिखानेके लिये सौर शक या संवत् का नाम इससे कुछ भिन्न होना उचित प्रतीत होगा । बंगाल, मलाबार की तरफके गंगासन (!) अथवा कोल्लमशक अर्थात् परशुरामशक यह सर्वथा आधुनिक शक हैं । प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंका कालनिर्देश करनेके लिये वे निरुपयोगी हैं ।

हमारा कालनिर्देश वेद, रामायण, महाभारत तक यदि हमें पहुँचाना होतो पांच हजार वर्ष भी अधूरे पडते हैं ! किन्तु भारतीय युद्धका काल अनेक संशोधकोंने इस सीमातक माना है । इ. सन् पूर्व ३१०२ अथवा शालिवाहन शक पूर्व ३१७९ वें वर्ष भारतीय युद्ध और उसके तत्काल पश्चात् धर्मराज या राजा युधिष्ठिरका राज्यारोहण हुआ, यह भी एक मत है । उसी समय ' कलियुग संवत् ' प्रारम्भ हुआ, ऐसा माना जाता है । ' एन्सायक्लो पीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स ' में संसार की युगसम्बन्धि जानकारी देते हुए कलियुगारम्भकी तारीख १७ फरवरी (ईसवी पूर्व ३१०२) दी है । किन्तु उसका आरम्भ ईसवीपूर्व ३१०२ के फरवरी की १८ वीं तारीखको प्रातःकाल हुआ, ऐसा माना जाता है । युधिष्ठिरशक ३०४४ वर्षोंतक चल चुकने के पश्चात् विक्रम संवत् प्रारम्भ हुआ, ऐसा समझा जाता है । अन्यत्र कलियुगके ४,३२,००० वर्षोंमें हुए हुए और होनेवाले शककर्त्ताओंका निर्देश किया हुआ है और वहाँ युधिष्ठिरशक ३०४४ वर्षोंकाही बताया गया है । तथापि भारतीय युद्ध के काल के विषयमें विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है । बहुतोंने उसे ईसवी सन् पूर्व १॥—२ हजार वर्षोंपर ही लाकर छोडा है । वास्तवमें वाद विषयक है कि भारतीय (कौरव पाण्डवीय) युद्ध कब हुआ ? कलियुग संवत् के प्रारम्भ के विषयमें कोई वाद नहीं है । अतः पंचाङ्गोंमें गतकलियुग की जो वर्ष संख्या दीजाती है वह अचूक है । यह उपर्युक्त विवेचनद्वारा सिद्ध होता है । आजके स्वाधीन भारत के नव संवत् के लिये ' कलियुगी संवत् ' नाम रखकर उसे हम ' भारतीय संवत् ' नाम देना ही अधिक उपयुक्त मानते हैं । पंचाङ्गकी गत कलियुग संख्या भी इस ' भारतीय संवत् ' की गत (वर्ष) संख्या समझकर, नवीन वर्षको उसका अगला भारतीयवर्ष कहेंगे ।

आज वह ' भारतीय संवत् ' ५०५३ वा चल रहा है तथा गत फरवरी २० से उसका ५०५४ वर्ष प्रारम्भ होगा । भा. सं. ५०५३ वा लीप वर्ष होनेके कारण फरवरी २० तारीख ५०५४ के प्रारम्भमें आई है । वैसे वह सदाके लिये फरवरी १९ को आयेगी । हमने ऊपर जो कॅलेण्डर का नमूना दिया है उसमें की तारीखें और मधु आदि

भारतीय मासोंकी तिथियाँ हजारों वर्ष मिलकर ठीक वेही आती हैं। अर्थात् १९ फरवरी तथा १ मधु कभी नहीं चूक सकता (इसी प्रकार अन्य ३६५ तारीख-- तिथियों के विषयमें समझा जावे) प्रति चौथे वर्ष १९ फरवरी को तपस्य ३० और उसके बादके मधुके १ से १० मितियोंको फरवरी २० से २९ तारीखे आयेंगी । यह कॅलेण्डर से स्पष्ट हो जायगा। हमारे कॅलेण्डर का अन्तिम पृष्ठ देखिये।

सम्प्रति भारतमें वर्तमान अनेक देशी विदेशी संवतोंके नाम और उनकी वर्ष संख्याका उल्लेख अनेक स्थानोंपर प्राप्त होता है । दोनों मिलकर सवत् संख्या ३४।३५ है और इनमें से कुछेक तो अल्पावधि संख्याक भी है । इसमें एक विचित्रता यह है कि कल्पाब्द, सृष्टि संवत्, वामन, श्रीराम, श्रीकृष्ण संवत् और युधिष्ठिर अथवा कलियुग संवत् में एक साम्य है। सभी संवतों में अन्तिम ५०५० आदि सहस्रोत्तर वर्ष संख्या बिल्कुल एकही है । परन्तु भारतमें प्रचलित संवत्, शक व सन् के विषयमें ज्ञानकोष कारोंद्वारा विस्तार के साथ शोध का कार्य हुआ है। 'ज्ञानेतिहास' नामक ५ वे विभागमें चौथे प्रकरणमें इसका उल्लेख है । उसका सारासार विचार करके हमने उपर्युक्त संवत् प्रस्तुत किया है । इसमें किसी पद्धति विशेषका अनादर, अधिक्षेपादि कुभावोका जराभी अंश नहीं है।

क्या संवत्सरोंके नामोंका प्रयोग किया जाय ? किन्तु किस क्रमसे ?

श्रीमान् शिवदास कृष्ण बारलिंगेने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक कलियुग संवत् के इस मानका एक विशिष्ट गणित पद्धतिद्वारा समर्थन भी किया है।

६० संवत्सरात्मक गणनासे उनके गणित का निकट-सम्बन्ध प्रतीत होता है। समस्त ग्रहोंमें प्रबल एवं एक एक राशीमें बहुत समयतक रहनेवाले शनि और गुरु नामके ग्रह हैं । ९१३ वर्षोंमें वे आकाशस्थ एक विशिष्ट स्थानमें आते हैं । परन्तु राशिचक्रमें उनकी युति भिन्न राशिमें साधारणतः ८ राशियोंके अन्तरसे और उसी राशिमें, उसी अंशमें १८,८५६ वर्षों से होती है। फल ज्योतिष शास्त्रदृष्ट्या इस शनि--गुरु युतिका भलाबुरा परिणाम लगभग २० वर्षों के अन्तरसे दिखाई देगा । ६० संवत्सरों में २० वर्ष ब्रह्माके, २० विष्णुके और २० शंकरके इस प्रकार सत्वरजतमोगुणी देवताओंके मानकर, क्षयनाम संवत्सरान्त, अन्तके बीस वर्ष घातापघात माननेकी रूढि है। किन्तु यह कथन अनुभवसे मेल नहीं खाता, यह सिद्ध किया जा सकता है। विषयान्तर के भयसे वह विषय यहाँ बढाना उपयुक्त नहीं मालूम पडता। इसके अतिरिक्त ६० संवत्सर मूल बार्हस्पत्य संवत्सर का अर्थात् ३६१ दिनोंके गुरुग्रहणके भ्रमणकालका अनु-सरण करके स्थित है। अतः उनका निर्देश सौर गणना पद्धतिमें आवश्यक नहीं है।

कलियुग सवत् का अर्थात् भारतीय संवत् का प्रारम्भ वराह मिहिरके मतसे 'विजय' नामक सवत्सरके नामसे हुआ। किन्तु 'ज्योतिषतत्व' ग्रन्थ का कर्ता 'प्रभव' नामक संवत्सरसे कलि संवत्सरका प्रारम्भ समझता है । तथापि नर्मदा के दक्षिण विभागीय भारतके समस्त भागोंमें कलि संवत् के प्रथम वर्षका नाम 'प्रमाथी' संवत्सर था, ऐसा माना जाता है । संवत्सरोंके ६० नामों में 'विजय' २७ वां, 'प्रभव' पहला और 'प्रमाथी' १३ वां है । आजका प्रचलित विक्रम संवत् 'शुभकृत' २००७ तथा 'शोभन' २००८ संवत्सरात्मक संख्याको अनुलक्षित करके प्रचलित है । ६० संवत्सरोंके क्रममें वे अनुक्रम ३६ वें तथा ३७ वें स्थानपर हैं। शालिवाहन शकके वर्ष के लिये दक्षिण भारत के भागोंमें प्रचलित रहनेवाले संवत्सरका नाम लगानेकी प्रथा ही है। योगायोगकी बात की कलिसंवत् के संवत्सर-नाम और शालिवाहन शकके संवत्सरके नाम एक ही आते हैं। कलि सं. ५०५३ को 'खर' व शा. श. १८७३ को भी 'खर' नामक संवत्सरही है। अर्थात् कलि सं याने भारतीय संवत् ५०५४ को एवं शा श. १८७४ को 'खर' का अगला 'नंदन' नामका संवत्सर आयेगा । इस प्रकरण के आरम्भमें जो दो प्रश्न उपस्थित किये गये हैं, उनके उत्तर संक्षेपमें इस प्रकार हैं--

(१) संवत्सरोंके नामोंका उपयोग करनेकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु यदि उनका उपयोग किया जाय तब भी कोई हानि नहीं है । शालिवाहन शकके चान्द्र पद्धतिके

पंचाङ्गमें जो नाम होगा वही नाम भारतीय संवत् का आयेगा। (२) संवत्सर-नामोंका यही क्रम स्वीकार्य है। इसके अतिरिक्त सौर एवं बार्हस्पत्य मानोंके मेल जमानेका-उत्तरप्रदेशीय विक्रमसवत् का दिक्कतका-मार्ग अनुकरणीय है, ऐसा हमें नहीं लगता। उसकी अपेक्षा तो संवत्सरोंके नाम हटादेने ही उचित होगा। अथवा इन्हींको सौर संवत्सरोंके नाम मानकर सर्वत्र इन्हींका उपयोग करना चाहिये।

भारतीय कालंदर्श का विवरण

(१)' उदयात् उदयं वारः ' का परिणाम इस कॅलेण्डरमें एक दिनके लिये रहेगा। क्रमशः आनेवाले सात वारोंमेंसे रवि, सोम इत्यादि नाम और तारीख अथवा तिथिके बदले प्रत्येक एक मासके क्रमसे ३१, ३० या २९ मिति होंगे। एक दिन एक मिति।

(२) दिनका परिणाम गिनने के साधन यन्त्रनिष्ठ सेकंड मिनिट और घण्टे हैं। इनका हमारे प्राचीन, विपल, पल, घटका, मुहूर्त, प्रहर आदिसे कोई विरोध नहीं है। सूर्योदय-से घडी शुरु होगी। १ से लेकर १२ घण्टे। अस्तमान पर्यन्त, अस्तमानसे पुनः सूर्योदय पर्यन्त १ से १२ घण्टे। दिन मानके अनुसार दिन और रात्रिका काल बढेगा या घटेगा।

(३) मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभस्, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य तथा तपस, तपस्य, ये नाम १२ महीनों के हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर, इसीक्रमसे ६ ऋतुओंका उल्लेख कालंदर्शके प्रत्येक मासके प्रारम्भ में किया जाय।

(४) माधवमासारम्भमें एक विषुव दिन तथा उर्जारम्भ-में दूसरा विषुव दिन होगा। तथापि उस दिन १० पल अथवा ४ मिनिट दिनमान अधिक ही होगा। वह ४।५ दिनों पूर्व ३० घटकाके बराबर होगा और दूसरे विषुव दिन वह ४।५ दिनों बाद बराबर होगा। इसका अनुभव कोल्हापुर, मदुराके देवी-मन्दिरोंमें उत्तम प्रकारेण आजाएगा। कोल्हापुरमें इससमय ४।८ दिन सूर्यकी किरणें देवी की मूर्तिपर सीधी पडती हैं (उन दिनोंमें यह चमत्कार देखकर लोग किरणोत्सव करते हैं) इसका कारण यह है कि मन्दिरोंका निर्माण करते समय प्राचीन साधन करके अर्थात् सूक्ष्म रीतिसे पूर्व बिन्दु साधकर बांधे जाते थे। कोल्हापुरमें मन्दिरका महाद्वार पश्चिमकी ओर होने के कारण यह चमत्कार दिनके उत्तरार्धमें तीसरे प्रहर के समय दिखाई पडता है। उनमें बीचके एक दिन किरणें बिल्कुल सीधी मूर्तिपर गिरती है। मदुरामें भी यह चमत्कार दिखाई पडता है। कोल्हापुरमें महाद्वारसे देवीका गर्भागार और सिंहासन काफी दूरीपर है। मदुरामें तो उससे भी अधिक दूर, बहुत दूर बहुत अन्दर है। तबभी वहाँतक इन किरणोंका प्रवेश होता ही है। भारतीयोंका यह स्थापत्यकौशल किसके लिये अभिमानकी वस्तु न होगा? वासन्तिक एवं शारदीय महोत्सव तो सबको सुपरिचित हैं ही। मकर संक्रमणका त्योहार तो हमलोग खूब उत्सवके साथ मनाते हैं। कितना छोटा दिन होता है तब! मराठीमें उसीको शाळु दिवस कहा जाता है।

(५) उपरिनिर्दिष्ट बारह महीनोंके मिलकर ३६५ दिनोंके समाप्त होते ही एक सौर वर्ष पूर्ण होजाता है, ऐसी हमारी मान्यता है। किन्तु $\frac{1}{4}$ दिनकी कसर रह जाती है और यह उड्डान (leap) वर्षसे पूरी कर ली जाती है। प्रत्येक चौथे वर्ष तपस्य महीनेके अन्तमें २९ दिनोंके ऐवजमें ३० दिन मानकर उसे हम पुरा कर सकेंगे। इसी प्रकार हम प्रत्येक चारसौ वर्ष पर करते रहेंगे। बीचके तीन शतकोंके सौवे वर्ष हम ऐसा नहीं करेंगे।

(६) हमने इस नवीन कालंदर्श के लिये प्राचीन कलिसंवत्को ही भारतीय संवत् के रूपमें स्वीकार किया है। उसके १९५२ के फरवरीकी १९ वीं तारीखको ५०५३ वर्ष समाप्त होंगे और ५०५४ वे भारतीय संवद का नूतन वर्ष फरवरी २० वी तारीखको प्रारम्भ होगा। उस दिन भारतीय कालंदर्श के मधुमासकी मिति १ सूर्योदय होते ही प्रारम्भ होगी।

(७) इस कालंदर्शमें सरकारी छुट्टियोंके दिन और चान्द्रमासके पंचाङ्ग के आधारपर प्राप्त होनेवाली शुक्ल और कृष्ण की दो अष्टमियां तथा पूर्णिमा अमावस्या अवश्य दिखानी चाहिए। क्योंकि उक्त तिथियोंपर समुद्रकी भरती और उतरती अवलम्बित रहती है। इस समुद्रबलयाङ्कित भारतीय

राष्ट्रके लिये ज्वार के उतार चढावका महत्व बहुत है । अतः इन तिथियोंका उल्लेख आवश्यक है ।

(८) इसके अतिरिक्त शुक्ल और कृष्ण एकादशी, संकष्टी चतुर्थी, घटिका-पल-युक्त प्रतिमासिक संक्रान्तिकाल, विषुवदिन, ग्रहण, महत्वके ग्रहोंकी युति आदि ज्योतिष शास्त्रका विवरण दिखाना चाहिए ।

(९) महत्व के त्यौहार, देवादिकोंके तथा महापुरुषोंके जयन्त्युत्सव, साधु सत्पुरुषोंकी पुण्य—तिथियाँ भी दिखानी चाहिए । इससे कालंदर्शकी उपयुक्तता और लोक प्रियता भी बढेगी ।

(१०) भारतीय वर्ष के लिये 'शक' या 'संवत्' किसी भी शब्द का प्रयोग हो । संवत्सरी नामोंके लिये

भारतीय कालंदर्शके नमुनेका पान.

भारतीय संवत् ५०५४ नंदन संवत्सर.

शालि० १८७३ माघ कृ. ९ ते फा. कृ. १०

वसंत ऋतु, मधु मास.

विक्रम सं २००८ शोभन नाम,
खिस्ताब्द १९५२ दि. २० फे. ते २१ मार्च.

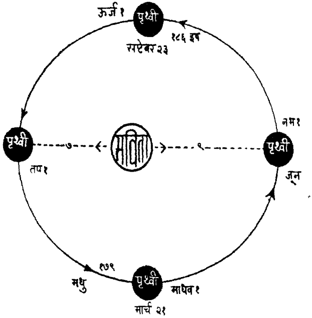
वार	मिति	मिति	मिति	मिति	मिति	चंद्र
रवि		५	१२	१९	२६ रंगपंचमी	७ दर्शन
सोम		सूर्यग्रहण घ. १९ प. ४५ ६ अमावास्या	१३	२०	२७	१३ व १४ अष्टमी शुद्ध
मंगळ		७	१४	२१ हुताशनी	२८	२१ पूर्णिमा
बुध	१ रामदास ९	८	१५	२२ धूलीवंदन	२९	२८ व २९ अष्टमी वद्य
गुरु	२ एकादशी	९	१६	२३ तुका. बीज	३० माधव घ. ३७ प. ३०	
शुक्र	३	१०	१७ एकादशी	२४ शिवजयंती	३१	
शनि	४	११	१८	२५ संकष्टी ४	१ माधव मास	

आग्रह नहीं होना चाहिए। यदि उसे आवश्यक ही समझा जाए तो आगामी ५०५४ वे भारतीय संवत् को पीछे बताये गये ' नन्दन ' शब्दसे पुकारा जाए । उसके पश्चात् क्रमसे विजयादि क्षयान्त ६० नामोंके समाप्त होजानेपर प्रभवादि ६० संवत्सर नामोंका चक्र आरम्भ कर दिया जाए।

(११) भारतीय कालंदर्शके मधु इत्यादि महीनोंके साथ अंग्रेजी महीने फरवरी–मार्च की तरह जोडी से (साथ-साथ) आते हैं। तथापि प्रत्येक एक दूसरे महीनोंके $\frac{2}{3}$ दिन या एकाध अधिक ही होता है। अतः हमने उसे मोटे तौरपर मार्चादि क्रमसे फरवरी तक गिननेकी योजना कल्पित की है। तथापि उनकी तारीखें प्रत्यक्ष रूपसे जो आती हैं वे ही दी हैं।

१९ फरवरी को १ मार्च कहना अथवा २१ मार्च के दिन १ एप्रिलसे गिनती प्रारम्भ करना हमारे हाथकी बात नहीं है । यदि ईसाई कैलेंडरवाले इतना परिवर्तन कर सकें तो $\frac{2}{3}$ से अधिक संसार के मनुष्य एकपंथ पर आसकते हैं।

(१२) घटिका–पल–युक्त संक्रमण कालको लक्षितकर देखते हुए, मधु, नमस्य इष और तपस्य इन चार सौर मासोंका प्रारम्भ ठीक समयपर हुआ है। माधव, शुक्र, शुचि और नभः का दूसरे दिन और ऊर्जे, सह, सहस्य और तप: उनके पहिले दिन, इस प्रकार प्रारम्भ हुए। यह शाक १८७२।७३ और इ. स. १९५१।१९५२ के विषयमें दिये हुए उपर्युक्त कोष्ठकोंसे प्रतीत होगा। प्रतिवर्ष बिल्कुल ऐसा ही होगा, यह बात नहीं है तथापि अगले १५।२० वर्षोंके अनुभव से इस विषयमें निश्चितरूपसे एक सिद्धान्त स्थिर हो सकता है।



(ऋ० ७।७६)

६१७ **देवानां चक्षुः कृत्वा अजनिष्ट**— देवोंका आंख सूर्य-उत्तम कर्मके साथ प्रकट हुआ है।

६१७ **उषा विश्वं भुवनं आविः अकः**— उषा सब भुवनोंको प्रकाशित करती है।

६१८ **देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त**— दिव्य मार्ग हिंसा रहित होते हैं।

६१८ **प्रतीची हर्म्येभ्यः अध्यागात्**— पश्चिम दिशाके प्रासादोंपर उषाने अपना तेज डाला है।

६१९ **सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि दिनानि आसन्**- सूर्यके पूर्व उगे हुए बहुत दिन थे।

६२९ **उषा जार इव पर्याचरन्ती, न यती इव**— उषा जारकी सेवा करनेके समान सेवा करती है, यतीके समान नहीं रहती।

६३१ **समाने ऊर्वे अधिसंगतासः** — एक महत्कार्यमे आये लोग संगठित होते हैं।

६३१ **ते संजानते ते मिथः न यतन्ते**— वे परस्पर एक विचारसे रहते है, आपसमे संघर्ष बढने नहीं देते।

६३१ **ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति**- वे दिव्य अनुशासन नहीं तोडते।

६३३ **दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना**— अत्यंत यशस्वी धन हमें दो।

(ऋ० ७।७७)

६३४ **युवतिः योषा न वपो रुरुचे**-तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर तरुण पतिके साथ चमकती है!

६३४ **विश्व जीवं चरायै प्रसुवन्ती**— सब जीवोंको विचरनेके लिये प्रेरित करती है।

६३४ **मानुषाणां अग्निः समिन्धे अभूत्**— मानवोंके घरोंमें अग्नि प्रदीप्त होने लगा है।

६३४ **तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः**— अन्धकारोंको बाधा पहुंचानेवाली ज्योति प्रकट हो रही है।

६३५ **विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्**— सबके सामने यह सुप्रसिद्ध उषा उठी है। उदित हुई है।

६३५ **रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्**— चमकीला शुभ्र वस्त्र पहन कर आगे बढ रही है।

६३५ **हिरण्य वर्णा सुदृशीकसंदृक्**— यह सुवर्णके वर्णवाली सुंदर दर्शनीय है।

६३६ **सुभगा देवानां चक्षुः वहन्ती**— यह भाग्यवाली देवोंके नेत्ररूपी सूर्यको लेकर आती है।

६३६ **चित्रा मघा विश्वं अनु प्रभूता**— अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त यह उषा सब विश्वके सामने प्रकट हो रही है।

६३७ **अमित्रं दूरे उच्छ**- शत्रुको दूर कर।

६३७ **ऊर्वी गव्यूति न अभयं कृधि**— विस्तृत भूप्रदेशपर हमारे लिये अभय कर।

६३७ **द्वेषः यावय, वसूनि आभर**— शत्रुओंको दूर कर, धन भरपूर भर दे।

६३८ **न आयुः प्रतिरन्ती**—हमारी आयुको बढाती है।

६३८ **गोमत् अश्वावत् रथवत् इषं राधः नः दधती**— गौओं, घोडों, रथोंके साथ अन्न और धन देती है।

६३८ **गृणते राधः चोदय**—भक्तके लिये धन देती है।

६३९ **अस्मासु बृहन्तं ऋष्व रयिं धाः**- हमे बडा तेजस्वी धन दे।

(ऋ० ७।७८)

६४० **अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन अस्मभ्यं वामं वक्षि**- हमारे पास आनेवाले बडे तेजस्वी रथमें आकर हमें श्रेष्ठ धन दे।

६४१ **उषा विश्वा तमांसि दुरिता ज्योतिषा अपबाधमाना याति**- उषा सब अन्धकारों और पापोंको तेजसे दूर करती हुई आती है।

६४२ **अजुष्टं तमः अपाचीनं आगत्**—अप्रिय अन्धकारको दूर कर रही है।

६४४ **विभाती तिल्विलायध्व**- स्वय तेजस्वी बनो और विश्वको स्नेहमय प्रकाश भरपूर दो।

(ऋ० ७।७९)

६४५ **जनानां पथ्या उषाः व्यावः**— लोगोंको मार्ग बतानेवाली उषा प्रकट हुई है।

६४५ **मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती**— मानवोंके ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद-इन पांचों प्रजाजनोंको जगाती है।

(सुभा० सं० ८७०)

६४६ उपसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते— उषाएं अपने प्रकाशको आकाशके अन्तोंतक फैलाती है।

६४६ युक्ता विशः न उषासः यतन्ते— संघटित प्रजाजनोंकी तरह उषायें अन्धकार दूर करनेका यत्न करती है।

६४३ ते गावः तमः समावर्तयन्ति- उषाकी किरणें अन्धकारको समेटती है।

६४६ सूर्यः इव बाहु, ज्योतिः यच्छन्ति— जैसा सूर्य अपने किरणोंको वैसे ही उषा प्रकाशको फैलाती है।

६४७ इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्- उत्तमोत्तम इन्द्रके समान स्वामिनी धनवाली उषा प्रकट हुई है।

६४७ सुविताय श्रवांसि अजीजनत्— लोगोंके कल्याणके लिये अन्नोंको यह उत्पन्न करती है।

६४७ सुकृते वसूनि विदधाति— उत्तम कर्म करने- वालेके लिये धन देती है।

६४८ दृळहस्य अद्रेः दुरः व्यौर्णोत्— सुदृढ कीलोंके द्वार खोल दिये है (और गौवें बाहर आरही हैं।)

६४९ देव देवं राधसे चोदयन्ती- प्रत्येक कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरणा देती है।

६४९ अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती- सत्य भाषण करनेवालोंको हमारे पास प्रेरित करती है।

६४९ व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः- अन्धकारको दूर करती हुई धन प्राप्त करनेवाली उत्तम बुद्धिका धारण करती है।

(ऋ० ७।८०)

६५० एषा नव्यं आयुः दधाना उषा ज्योतिषा गूहती तमः अबोधि— यह उषा तरुण आयुवाली अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई जाग उठी है।

६५० अहयमाणा युवतिः अग्रे एति— लज्जा न करनेवाली यह तरुणी पहिले उठकर आगे आती है।

६५१ गोमतीः अश्वावतीः वीरवतीः भद्राः उषसः नः सद उच्छन्तु— गौओं घोडों और वीर पुत्रोंके साथ कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरोंको प्रकाशित करें।

६५१ घृतं दुहानाः विश्वतः प्रपीताः— घीका दोहन करने वाली सब ओरसे परिपुष्ट हुई उषाएं प्रकाश फैल रही हैं।

(ऋ० ७।८१)

६५३ महितमः अपव्ययति, सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति— बडे अन्धकारको उषा दूर करती, और उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा लोगोंको प्रकाश दिखानेके लिये प्रकाश करती है।

६५४ उद्यत् नक्षत्रं अर्चिमत्— उदय होनेवाला नक्षत्र तेजस्वी होता है।

६५४ भक्तेन संगमे महि— अन्नको हम प्राप्त करेंगे।

६५५ पुरु स्पार्हं वहसि, दाशुषे मयः रत्नं— स्पृहणीय बहुत धन तू धारण करती है और दाताको सुख और रत्न देती है।

६५७ दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः आभर— अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन हमें भरपूर दे डालो।

६५७ मर्ते भोजनं रास्व —मनुष्योंके योग्य भोजन दो।

६५८ सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वन श्रवः, गोमतः वाजान्,- ज्ञानियोंके लिये अमर धन, यश और गौओंसे प्राप्त होनेवाले दूध रूपी अन्न दो।

(ऋ० ७।८२)

६५९ विशे जनाय महि शर्म यच्छतं— प्रजाजनों- को बडा सुख दे दो।

६५९ यः पृतनासु दूढयः दीर्घप्रयुज्यं अति वनुष्यति तं जयेम— जो युद्धोंमें पराजित नहीं होता ऐसा दुष्ट शत्रु सज्जनको बडे कष्ट पहुंचाता है, उसपर हम विजय प्राप्त करेंगे।

६६० विश्वे देवासः ओजः बल संदधुः- सब देव ओज और धन धारण करते हैं।

६६१ धियः पिन्वतं- बुद्धियोंको बढाओ।

६६२ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते— घुटने टेक कर आसन लगा कर बैठनेवाले क्षेमसुखकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं।

६६२ कारवः उभयस्य वस्वः ईशानाः- शिल्पी दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी हैं।

६६६ भुवनस्य विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः- भुवनके सब पदार्थ तुम अपनी शक्तिसे निर्माण करते हैं।

(सुभा० सं० ८९९)

६६४ **अन्यः अव्रतस्य अजामिं आतिरत्**— एक अधिकारी बन्धुभाव न रखनेवाले हिंसक दुष्टको दूर करे।

६६४ **अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्रवृणोति**- दूसरा अधिकारी थोडेसे सैन्यसे बहुत शत्रुओंको घेरता है।

६६४ **त्विषे ओजः मिमाते**- तेज बढानेके लिये शक्ति बढाते हैं।

६६५ **तं मर्तं न अंहः, न दुरितानि, न तपः, नशते यस्य अध्वरं गच्छथः**- उस मनुष्यको पाप, दुष्कृत्य, संताप कष्ट नहीं देते, जिसके यज्ञमें आप जाते है।

६६६ **दैव्येन अवसा अर्वाक् आगतं**- दिव्य रक्षणसे पास आओ।

६६६ **युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं**- तुम्हारी मित्रता, बन्धुता, सुख दायिता हमे प्राप्त हो।

६६७ **भरे भरे पुरोयोधा भवत**- प्रत्येक युद्धमें आगे होकर युद्ध करनेवाले बनो।

६६८ **अस्मे महि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु**- हमें महान् तेजस्वी विस्तृत सुख प्राप्त हो।

(ऋ० ७।८३)

६६९ **दासा वृत्रा आर्याणि च हतं**- विनाशक, घेरनेवाले शत्रु और क्षुद्र विचारके शत्रुसे मिले आर्य जो होंगे वे सब शत्रु है, उनको मारो।

६७० **कृतध्वजः नरः समयन्ते**- ध्वज ऊपर उठाकर वीर लडते हैं।

६७० **आजौ किंचन प्रियं न भवति**- युद्धसे कुछ भी प्रिय नहीं होता।

६७० **यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते**- युद्धसे ज्ञानी लोग भयभीत होते हैं।

६७१ **भूम्याः अन्ताः ध्वसिताः समदृक्षत**- भूमीके ऊपरके प्रदेश उध्वस्त हो जाते हैं।

६७१ **दिवि घोषः आरुहत्**- आकाशमें बडा कोलाहल सुनाई देता है।

६७१ **जनानां अरातयः उपतस्थुः**- जनताके शत्रु सामने सामने खडे होते हैं।

६७१ **अवसा अर्वाक् अगातं**- संरक्षक साधनोंसे समीप आजाओ।

६७२ **अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता**-- न बढनेकी अवस्थामें आपसका भेद वध आदि साधनोंसे नाश करो।

६७२ **सुदासं प्रावतं**-- उत्तम दानी सज्जनको सुरक्षित रखो।

६७३ **अर्यः अघानि मा अभ्यातपन्ति**— शत्रुके पाप मुझे ताप दे रहें हैं।

६७३ **उभयस्य वस्वः यूयं राजथ**— दोनों धनोंके तुम स्वामी हो।

६७४ **उभयस्य वस्वः सातये आजिषु हवन्ते**- दोनों प्रकारके धनोंके दानके लिये होनेवाले युद्धोंमें तुम वीरोंको बुलाते हैं।

६७५ **अत्रसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या**- अत्र यज्ञ करनेवालोंकी आकाक्षाएं सफल हुई।

६७७ **अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते**- एक वीर युद्धोंके समय शत्रुओंका नाश करता है।

६७७ **अन्यः सदा व्रतानि अभिरक्षते**- दूसरा वीर सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है।

६७७ **अस्मे शर्म यच्छतं**- हमे सुख दो।

(ऋ० ७।८४)

६७९ **इन्द्रा वरुणौ राजानौ**—इन्द्र और वरुण राजे है।

६८० **युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति**- आपका बडा राष्ट्र यह द्युलोक सबको प्रसन्न करता है।

६८० **अरज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः**- रज्जु रहित बंधनोंसे पापियोंको बांध देते हैं।

६८० **वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः**- वरुण देवका क्रोध हमपर न हो।

६८० **इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्**- इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र बना देवे।

६८१ **विदथेषु नः यज्ञं चारुं कृतं**— युद्धोंमें भी हमारा यज्ञ उत्तम करो।

६८१ **सूरिषु प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतं**- विद्वानोंमें प्रशंसा योग्य ज्ञान हो।

६८१ **देवजूतः रयिः नः उपो एतु**— देवोंद्वारा मिलनेवाला धन हमारे पास शीघ्र आजाय।

(सुभा० सं० ९३२)

६८१ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्रतिरेतं— स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे हमें सुरक्षित करो।

६८२ अस्मे विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्त- हमें सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त बहुत अन्नके साथ रहनेवाला धन दो।

६८२ यः अनृता प्रमिनाति— जो वीर असत्योंको रोकता है।

६८२ शूरः अमिता वसूनि दयते- शूर वीर अपरिमित धन देता है।

६८३ सुरत्नासः देववीतिं गमेय- उत्तम रत्नोंको धारण करके यज्ञमें जायेंगे।

(ऋ० ७।८५)

६८४ अरक्षसं मनीषां पुनीषे- राक्षस भावरहित बुद्धिको तुम अधिक पवित्र करता है।

६८४ अभीके यामन् नः उरुष्यतां- युद्धमें शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारे वीरोंका संरक्षण हो।

६८५ येषु दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति- युद्धोंमें तेजस्वी शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं।

६८५ युवं अमित्रान् हतं— तुम शत्रुओंको मारो।

६८५ शर्वा विषूचः पराचः- घातक शस्त्रोंसे सब शत्रु भ्रांत होकर भागने लगें।

६८६ अन्यः प्रविभक्ताः कृष्टीः धारयति— एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् धारण करता है।

६८६ अन्यः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति- दूसरा शत्रुओंका नाश करता है।

६८७ सुक्रतु होता ऋतचित् अस्तु- उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञ विधिको जाननेवाला हो।

६८७ सः प्रयस्वान् सुविताय असत्— वह अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है।

(ऋ० ७।८६)

६९० उत स्वया तन्वा संवदे ? क्या मैं अपने शरीरसे उस प्रभुके साथ बोलूं ?

६९० कदा वरुणे अन्तः भुवानि— कब वरुणमें मैं हो जाऊं।

६९० कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं— कब मैं उत्तम विचार वाला होकर प्रभुके साथ बोलूं।

६९१ विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि- मै पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास गया हूं।

६९३ नः पित्र्या द्रुग्धानि अवसृज— हमारे पिताके पापोंको दूर कर।

६९३ वयं तनूभिः या चकृम अवसृज— हमने अपने शरीरोंसे जो पाप किये हों, उनको दूर कर।

६९३ पशुतृपं तायुं— पशुकी चोरी करता है, पश्चात् वह चोर उस पशुको घास पानी देकर तृप्त करता है। (यह पापमें पुण्य है।)

६९४ कनीयसः ज्यायान् उपारे आस्ति— छोटेके समीप बडा रहकर उसको पापमें प्रवृत्त करता है।

६९४ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता- सुस्ती असत्यका प्रवर्तन करती है।

६९५ मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि— इच्छा पूर्ण करने, तथा भरण-पोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा निष्पाप बनकर मैं करूंगा।

६९५ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ईश्वर अज्ञानियोंको ज्ञान देता है।

६९५ कवितारः देवः गृत्सं राये जुनाति— श्रेष्ठ कवि विबुध उपासकको धन देता है।

६९६ नः योगे क्षेमे शं अस्तु— हमारे योग क्षेममें कल्याण हो।

६९६ हृदि उपाश्रितः शं अस्तु— हमारे हृदयमें प्रसन्नता रहे।

(ऋ० ७।८७)

६९८ ते विश्वा धाम प्रियाणि- तुम्हारे सब धाम हमारे लिये प्रिय हैं।

६९९ वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति- वरुणके दूत चलते हुए द्यावा पृथिवीमें सबको देखते हैं।

६९९ ये ऋतावनः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः मन्म इषयन्त- ये सत्य पालक, ज्ञानी, यज्ञबुद्धि धारण करनेवाले विद्वान् मननीय स्तोत्रको प्रेरित करते हैं।

(सुभा० सं० ९६३)

७०० विद्वान् विप्रः अपराय युगाय शिक्षन् पदस्य गुह्या वोचत्- विद्वान् विशेष बुद्धिवान् समीप आनेवाले शिष्यको सिखानेकी इच्छासे पदके गुह्य अर्थको समझाता है।

७०१ गृत्सः राजा वरुणः दिवि शुभे चक्रे- ज्ञानी राजा वरुणने द्युलोकमें कल्याणका साधन निर्माण किया है।

७०२ सुपारदक्षः गंभीर शंसः अस्य सतः राजा- उत्तम रीतिसे दक्षतासे दुःखके पार होनेवाला, गंभीर कीर्तिसे युक्त ऐसा यह इस विश्वका राजा है।

६०३ आगः चकुषे मिळयाति, वरुणे वयं अनागा स्याम- पाप करनेवालेको भी सुख देता है, उस वरुणके सामने हम निष्पाप होकर रहेंगे।

(ऋ० ७।८८)

७०४ मीळ्हुषे वरुणाय शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्रभरस्व- सुख देनेवाले वरुणके लिये शुद्ध और प्रिय स्तोत्र भरपूर गाओ।

७०६ नाव आरुहाव, समुद्रं मध्ये प्रेरयावः, यत् अपां स्नुभिः अधिचराव, शुभे कं प्रेखं प्रेखयावहे- नौकापर हम दोनों (वरुण और भक्त) चढें, समुद्रके मध्यमें नौकाको चलायें, जब हम समुद्रके मध्यमें विचरने लगें, तब कल्याणके साधनके लिये झूलेपर चढनेके समान होता रहेगा।

७०८ पुरा चित् अवृकं सचामहे- प्राचीन कालसे चलता आया अकुटिल सख्य हो ऐसा हम चाहते है।

७०८ ते बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगाम- तेरे बडे प्रमाणवाले हजारो द्वारोंवाले सभा गृहको मै प्राप्त होऊं।

७०९ ते नित्यः आपिः, ते प्रिय सखा,- तेरा नित्य मित्र और तेरा प्रिय सखा होकर मैं रहूंगा।

७१० ध्रुवासु आसु क्षितिषु क्षियन्तः— इस जनतामें हम सदा रहें।

७१० वरुण अस्मत् पाशं विमुमोचत्- वरुण हमसे पाशको दूर करें।

(ऋ० ७।८९)

७११ अह मृण्मयं गृहं मो गमं— मुझे मिट्टीके घरमें रहना न पडे।

७१२ हे सुक्षत्र ! मृळय— हे उत्तम क्षत्रिय। हमें सुखी कर।

७१३ प्रस्फुरन् एमि— स्फुरण प्राप्त करके मैं बढूंगा।

७१३ समह शुचे ! क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम मृळय— हे धनवान पवित्र देव ! कर्म शक्तिकी न्यूनताके कारण मैं दु.खको प्राप्त हुआ हूं, इसलिये मुझे सुखी कर।

७१५ दैव्ये जने यत् मनुष्या अभिद्रोहं चरामसि अचित्ती तव यत् धर्मा युयोपिम, तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः— दिव्य मनुष्यके संबंधमे जो द्रोह हम मनुष्योंने किया हो, न समझते हुए जो कर्तव्यका लोप हमसे हुआ हो, उस पापसे हमारा नाश न कर।

(ऋ० ७।९०)

७१७ मर्त्येषु प्रशस्तं कृणोषि— मानवोंमे प्रशंसा होने-योग्य श्रेष्ठताके प्रति तुम पहुंचाते हैं।

७१९ अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्- निष्पाप उत्तम दिनोंकी उषायें हमारे लिये प्रकाशित होती र हें।

७२० वां ईशानयोः वीरवाहं रथं पृक्षः अभि सचन्ते- आप स्वामियोंके वीर बैठनेवाले रथको अन्न यज्ञके स्थानके पास पहुंचाते हैं।

७२१ ईशानासः गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः स्वः नः वृधते- आप स्वामी गौवें घोडे धन सुवर्णसेयुक्त धन हमें देते हैं।

७२१ सूरयः विश्वं आयुः अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः— ज्ञानी लोग पूर्ण आयुतक अश्वारोही वीरोंके साथ युद्धोंमें शत्रुका पराभव करते रहेंगे।

(ऋ० ७९।१)

७२३ बाधिताय मनवे अनवद्यासः आसन्- दुःखी मनुष्यके हितके लिये यत्न करनेवाले प्रशंसित होते हैं।

७२५ पीवः अन्नान् रयिवृधः सुमेधाः नियुतां अभि श्रीः श्वेतः सिषक्ति- पुष्टि कारक अन्नों और धनों-वाले वीरोंकी सेवा बुद्धिमान तेजस्वी घोडोंमेंसे श्वेत वर्णका घोडा करता है।

(ऋ० ७।९१)

७३२ नः सभोजसं रयिं गव्यं अश्व्यं वीरं च राधः नियुवस्व- हमारे लिये उत्तम भोजनके साथ धन, गौवें, घोडे, वीर पुत्र और वैभव दे दो।

७३३ अर्थः नितोशानासः सूरिभि वृत्राणि घ्नन्तः स्याम- शत्रुओंका नाश करनेवाले, तथा ज्ञानियोंके साथ दुष्टोंका नाश करनेवाले हम हों। (सुभा० सं० ९८)

७३३ नृभिः युधा अमित्रान् घ्नतः— वीरोंके साथ रहकर युद्धोंमें शत्रुओंको मारेंगे।

(ऋ० ७।९३)

७३६ उशते वाजं धेष्ठाः- उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल और सामर्थ्य दे दो।

७३६ साकं वृधा शूशुवांसः— साथ साथ रहकर बढनेवाले प्रभावी वीर बनो।

७३६ भूरेः रायः यवसस्य क्षयन्तौ— बहुत धन और धान्य अपने पास रखनेवाले बनो।

७३६ स्थविरस्य घृष्वेः वाजस्य पृक्तं— बहुत शत्रु नाशक बल हमें चाहिये।

७३७ वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः विदथं उपोगुः— बलवान् ज्ञानी वीर अपनी बुद्धिका विकास करनेकी इच्छासे स्पर्धा क्षेत्रोंमें जाते हैं।

७३७ नरः काष्ठां नक्षमाणाः- नेता लोग उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुंचना चाहते हैं।

७३८ प्रमतिं इच्छमानः विप्रः पूर्वभाजं यशसं रयिं ईट्टे- बुद्धिके प्रकर्षकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी इच्छा करता है।

७३८ नव्योभि देष्णैः नः प्रतिरतं- नवीन देने योग्य धन देकर हमें दुःखसे पार करो।

७३९ महीं मिथती शूरसाता तनूरुचा संयतैते- बडी लडनेवाली शत्रुकी शूर सेनासे होनेवाले युद्धमें तेजस्वी वीर ही विजयके लिये प्रयत्न करते हैं।

७३९ देवयुभिः जनेन सत्रा अदेवयुं विदथे हतं- देवभक्तोंके साथ रहनेवाले वीरोंके द्वारा युद्धमें देवनिंदक शत्रुका वध किया गया है।

(ऋ० ७।९४)

७४४ ईशानाः धियः पिप्यतं- तुम राजा हो इसलिये अपनी बुद्धियोंको बढाओ।

७४५ पापत्वाय अभिशस्तये निदे मा रीरधतं— पाप निंदा हीनत्व आदिके कारण हमारा नाश न हो।

७४६ धिया धेनाः पेरयामः- बुद्धिसे वाणीको हम प्रेरित करते हैं।

७४७ सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते- एक दुःखमें रहनेवाले ज्ञानी संगठित होकर बल बढानेके लिये वीर काव्यका गान करते हैं।

७४८ विपन्यवः प्रयस्वन्तः सनिष्यवः मेधसाता वां गोर्भिः हवामहे— ज्ञानी प्रयत्नशील धनकी इच्छा करनेवाले बुद्धिके संवर्धनके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं।

७४९ दुःशंसः नः मा ईशत— दुष्ट हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे।

७४९ चर्षणीसहा अस्मभ्यं अवसा आगतं— शत्रुका पराभव करनेवाले वीर हमारे पास संरक्षक शक्तिके साथ आजांय।

७५० कस्य अरुषस्य मर्त्यस्य धूर्तिः नः मा प्रणक्- किसी शत्रुकी हिंसा करनेकी शक्ति हमारा नाश न करे।

७५१ गोमत् अश्ववत् हिरण्यवत् वसु वनेमहि- गौवें घोडे, सुवर्णसे युक्त धन हमें मिले।

७५४ दुःशंस दुर्विद्वांसं आभोगं रक्षस्विनं हन्मना हतं— दुष्ट तथा दुष्ट बुद्धिवाले अपहरण करनेवाले आसुरी स्वभाववाले शत्रुका शस्त्रसे वध कर।

(ऋ० ७।९५)

७५५ एषा सरस्वती आयसी पूः धरूण- यह विद्या देवी लोहेके कीलेके समान सबका रक्षण करनेवाली है।

७५६ एका सरस्वती अचेतत्— यह एक ही विद्यादेवी चेतना उत्पन्न करती है।

७५६ भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती— विश्वके अनेक प्रकारके धनोंको यह विद्यादेवी बताती है।

७५७ नर्यः वृषा यज्ञियासु योषणासु वावृधे— मानवोंका हित करनेवाला बलवान तरुणवीर पूजनीय स्त्रियोंमें उत्पन्न होकर बढता है।

७५८ सुभगा सरस्वती— उत्तम भाग्यवाली यह विद्या देवी है।

७५८ युजा राया सखिभ्यः उत्तरा सरस्वती- योग्य धन धान्य होनेसे परस्पर प्रेम भावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देनेवाली यह विद्या देवी है।

७६० ऋतस्य द्वारौ व्यावः- सत्यके द्वार खोल दिये गये हैं-

७६० वाजान् रासि— अन्नों और बलोंको देती है।

(सुभा० सं० १०१७)

(ऋ० ७।९६)

७६१ पूरवः उभे अन्धसी अधिक्षियन्ति- नागरिक लोग दोनों प्रकारके अन्नोंको प्राप्त करते हैं।

७६१ सरस्वती अवित्री— विद्या देवी संरक्षण करती है।

७६१ मघोनां राधः चोद- धनवानोंके धनको सत्कर्ममें प्रेरित कर।

७६२ भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्- कल्याण करनेवाली सरस्वती अधिक कल्याण करती है।

७६३ अकवारी वाजिनीवती चेतति- सीधा मार्ग बतानेवाली अन्न देनेवाली विद्या देवी स्फुरण देती है।

७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः सरस्वन्तं हवामहे- पत्नीवाले पुत्रकी इच्छा करते हैं, ये उत्तम दान देते हुए अग्रेसर होकर सरस्वान् (सरस्वतीके पति-विद्याके स्वामी) की सहायता चाहते हैं।

७६५ अविता भव- संरक्षण करनेवाला हो।

(ऋ० ७।९७)

७६८ दैव्या अवांसि आवृणीमहे- हम दिव्य संरक्षणके साधनोंको प्राप्त करेंगे।

७६८ यः परावतः पिता इव नः दाता- जो दूर रहनेवाले पिताके समान हमारे कल्याणके लिये देनेवाला है।

७६८ मीळ्हुषे अनागाः भवेम- सुख देनेवाले उस प्रभुके सामने हम निष्पाप होकर रहेंगे।

७६९ यः देवकृतः ब्रह्मणः राजा- जो देवके द्वारा बनाये ज्ञानका राजा है।

७७० नः सुवीर्यस्य रायः काम- हमें बडे पराक्रम करनेकी शक्तिरूपी धन प्राप्त हो यही हमारी इच्छा है।

७७० नः सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्- हमारे ऊपर आये दुःखोंको हम दूर करेंगे।

७७० प्रेष्ठः बृहस्पतिः नः योनिं आसदतु— श्रेष्ठ बृहस्पति हमारे यज्ञ गृहमें आकर बैठे।

७७१ अमृताय जुष्टं अर्कं अमृतासः आधासुः— मृत्युको दूर करनेवाले सेवनीय अन्नको अमरदेव हमें देते हैं।

७७१ अनर्वाणं बृहस्पतिं हुवेम— पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिका हम वर्णन करते हैं।

७७२ शग्मास अरुषासः सहवाहाः अश्वाः बृहस्पतिं वहन्ति, यस्य सहः चित्- सुखदायी तेजस्वी साथ रहक वाहन ढोनेवाले घोडे बृहस्पतिको वहन करते हैं, इसका शत्रुनाशक बल बडा है।

७७३ शुचिः शतपत्रः शुन्ध्युः हिरण्यवाशीः इषिरः स्वर्षाः स्वावेशः ऋष्वः बृहस्पतिः सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः— पवित्र सैंकडों वाहनोंवाला; शुद्ध सुवर्ण जैसे तेजस्वी आयुधोंवाला, प्रगतिशील, निजतेजसे प्रकाशित सुन्दर अपने मित्रोंके लिये पर्याप्त पेय करता है।

७७५ धियः अविष्टं— अपनी बुद्धियोंका संरक्षण करो।

७७५ पुरंधीः जिगृतं— विशाल बुद्धकी प्रशंसा करो।

७७५ वनुषां अर्यः अरातीः जजस्तं— भक्तोंके शत्रुओंकी सेनाका नाश करो।

७७६ दिव्यस्य पार्थिवस्य वस्वः ईशाथे- तुम दिव्य और पार्थिव धनके स्वामी हो।

७७६ कीरये धनं धत्तं— ज्ञानी कविके लिये धन दो।

(ऋ० ७।९८)

७८० महतः मन्यमानान् योधयाः, शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम- बडे घमंडी शत्रुओंका युद्ध तुम्हारे साथ हुआ, उन हिंसक शत्रुओंका पराभव हम अपने बाहुबलसे करेंगे।

७८० नृभिः युतः अभियुध्याः तं सौश्रवसं आजिं जयेम — अपने वीरोंके साथ रहकर जिस समय तुम शत्रुसे युद्ध करोगे, उस यश बढानेवाले युद्धमें हम विजय पायेंगे।

७८१ अदेवीः मायाः असहिष्ट- आसुरी कपटोंका तुमने पराभव किया है।

७८१ गवां एकः गोपतिः असि— गौओंका एक ही स्वामी तुम हो।

७८२ ते प्रयतस्य वस्वः ईशीमहि— तुम्हारे दिये धनका हम भोग करेंगे।

(ऋ० ७।९९)

७८४ ते महित्वं न अश्नुवन्ति— तेरी महिमाको कोई नहीं जान सकता।

७८४ त्वं परमस्य वित्से— तू परम श्रेष्ठ ज्ञानको जानता है। (सुभा० सं० १०४७

७८५ ते महिम्नः परं अन्तं न जायमानः न जातः आप— हे प्रभो तेरी महिमाके पारको कोई न जन्मनेवाला और न कोई जन्मा हुआ जान सकता है।

७८७ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथु — यज्ञके लिये तुमने विस्तृत स्थान बनाया है।

७८७ वृषशिप्रस्य दासस्य मायाः पृतनाज्येषु जघ्नतुः- बलवान तथा सुरक्षित शत्रुके कपट जालोंको तुमने युद्धोंके समय नष्ट किया है।

७८८ शंबरस्य दंहिता नव नवतिं च पुरः श्नथिष्टं— शंबरासुरकी सुरक्षित निन्यानवे नगरोंका तुमने नाश किया।

७८८ वर्चिनः असुरस्य शतं सहस्रं च वीरान् अप्रति साकं हथः- तेजस्वी बलिष्ठ असुरके सौ और हजारों वीरोंको तुमने अतुलनीय रीतिसे मारा।

७८९ वृजनेषु इषः पिन्वतं— युद्धोंके समय अन्नको अधिक तैयार करो।

(ऋ० ७।१००)

७९१ एतावन्तं नर्यं आविवासत्- ऐसे ही मनुष्योंके हित करनेवाले वीरकी पूजा होती है।

७९२ विश्वजन्यां अमृक्तां सुमतिं मतिं दाः-- हमें सर्वजन हितकारी दोषरहित उत्तम विचारोंसे युक्त बुद्धि दो।

७९२ सुवितस्य अश्वावत् पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः पर्चं-- हमें सुखसे प्राप्त घोडोंसे युक्त तेजस्वी विपुल धन दो।

७९३ तवसः तवीयान् विष्णुः प्रास्तु- समर्थसे समर्थ यह व्यापक प्रभु हमारा सहायक हो।

७९३ अस्य स्थाविरस्य नाम त्वेषं हि- इस बडे देवका नाम बडा तेजस्वी है।

७९४ एष विष्णुः एतां पृथिवीं मनुषे क्षेत्राय दशस्यन्- इस व्यापक प्रभुने इस बडी पृथिवीको मानवोंके लिये निवासार्थ दिया है।

७९४ अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः- इसके भक्त यहां स्थिर होते हैं।

७९४ सुजनिमा उरुक्षितिं चकार— कुलीन वीर इस पृथिवीको निवासके लिये उत्तम बनाता है।

७९५ ते नाम, वयुनानि विद्वान् अर्यः अद्य प्र शंसामि— तेरे नामको, तेरे कार्योंको जाननेवाला मैं आज गाता हूं।

७९५ अतव्यान् तवसं त्वा गृणामि- मैं छोटा तुझ बडेका यश गान करता हूं।

७९६ समिथे अन्यरूपः बभूथ—युद्धमें तुम अन्यान्य रूपोंको धारण करता है।

(ऋ० ७।१०१)

७९८ सद्यः जातः वृषभः रोरवीति— अभी उत्पन्न हुआ बैल भी शब्द करता है।

७९९ यः विश्वस्य जगतः देवः ईशे— जो देव सब विश्वपर प्रभुत्व करता है।

८०१ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः— जिसमें सब भुवन रहते हैं (वह प्रभु है)

(ऋ० ७।१०२)

८०५ यः पर्जन्यः ओषधीनां गवां अर्वतां पुरुषीणां गर्भं कृणोति:— यह पर्जन्य, औषधि, गौवें, घोडे तथा मनुष्यकी स्त्रियोंका गर्भ करता है।

(ऋ० ७।१०३)

८१० एनोः अन्यः अन्यं अनुगृभ्णाति- इनमेंसे एक दूसरेकी सहायता करता है।

(ऋ० ७।१०४)

८१७ रक्षः तपतं, उब्जतं- दुष्टोंको ताप दो, उनको मारो।

८१७ तमोवृधः न्यर्पयतं— अज्ञान बढानेवालोंको हीन बनाओ।

८१७ अचितः परा शृणीतं— अज्ञानियोंको दूर करो।

८१७ अत्रिणः न्योषतं, हतं, नुदेथां, निशिशीतं- दूसरोंको खानेवाले दुष्टोंको जला दो, काटो, भगा दो, निर्बल बना दो।

८१८ अघशंसं अघं सम् अभि- पापी दुष्टको विनष्ट करो।

८१८ तपुः अग्निवान् चरुः इव यवस्तु— दूसरोंको ताप देनेवाला अग्निपर रहे चावल जैसा जलकर नष्ट हो जाय।

(सुभा० सं० १०७५)

८१८ ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्तं— ज्ञानके द्वेषी, कच्चा मांस खानेवाले, भयंकर रूपवाले, सब कुछ खानेवालेके संबंधमें निरंतर द्वेष धारण करो।

८१९ दुष्कृतः अनारंभणे तमसि अन्तः प्रविध्यतं- दुष्कर्म करनेवालेका अथाह अन्धकारमें विनाश करो।

८१९ यथा एकः च न पुनः अतः न उदयत्— जिससे एक भी दुष्ट फिर कष्ट देनेके लिये न आसके, (ऐसा करो।)

८१९ तत् वां मन्युमत् अवः शवसे अस्तु— यह आपका उत्साही बल शत्रुपर विजय देनेके लिये पर्याप्त हो।

८२० दिवः पृथिव्याः वधं तर्हणं अघशंसाय संवर्तयतं- द्युलोकसे अथवा पृथिवीसे घातक शस्त्र दुष्टोंके नाश करनेके लिये प्राप्त करो।

८१० पर्वतेभ्य स्वर्यं उत्तक्षतं, येन वावृधानं रक्षः निजूर्वथ— पर्वतोंसे घातक शस्त्र ले आओ, जिससे बढनेवाले राक्षसोंको तुम मार सकोगे।

८११ अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः तपुर्वधेभिः अजरेभिः अत्रिणः पर्शाने निविध्यतं, निस्वरं यन्तु- अग्निके समान तपानेवाले, पत्थरोंके समान मारनेवाले, तपाकर प्रहार करनेवाले, क्षीण न होनेवाले आयुधोंसे सर्वभक्षक दुष्टोंकी पसलियां तोड दो, वे चुपचाप भाग जांय।

८१३ तुजयद्भिः एवैः प्रतिस्मरेथां- वेगवान घोडोंसे शत्रुपर आक्रमण करो।

८११ भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं— विनाशकारी द्रोही राक्षसोंको मारो।

८११ दुष्कृते सुगं मा भूत्— दुष्टोंको व्यवहार करना सहज न हो।

८१३ यः नः द्रुहा अभिदासति— जो हमारा द्रोह करता है (उसका नाश करो।)

८१४ पाकेन मनसा चरन्तं मां, यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे, असतः वक्ता असन् अस्तु— पवित्र मनसे व्यवहार करनेवाले मुझे भी, जो असत्यभाषणोंसे नीचा करता है, उसका वह असत्यभाषण असत्य ही सिद्ध हो।

८१५ ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते, ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति, तान् अहये प्रददातु, निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु— मुझ जैसे सत्यवादीको अनेक उपायोंसे जो कष्ट देते हैं, जो अपनी शक्तिके कारण हितकर्ताको भी दूषण देते हैं, उनको शत्रुके अधीन करो अथवा उनको निर्धन अवस्थाको पहुंचा दो।

८१६ यः गवां अश्वानां तनूनां पित्वं रसं दिप्सति, सः स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु, सः तन्वा तना च निहीयतां- जो गौवों, घोडों और मानवोंके शरीरोंके सत्त्वरूप रसको नष्ट करता है, वह चोर आदि शत्रु विनाशको प्राप्त हो जाय, वह अपने शरीर तथा संतानसे विनष्ट होवे।

८१७ यः दिवा नक्तं नः दिप्सति, अस्य यशः परिशुष्यतु, स तन्वा तना च परः अस्तु- जो दिनरात हमें कष्ट देता है, इसका यश सूख जाय, और वह शरीर और संतानसे रहित हो जाय।

८१८ सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः यत् सत्यं, यतरत् ऋजीयः, तत् सोमः अवति, असत् हन्ति— सत् और असत् भाषणोंकी स्पर्धा होती है, जो सत्य और जो सरल होता है, उसका रक्षण सोम करता है जो असत् होता है उसका नाश करता है।

८२९ सोमः वृजिनं नैव हिनोति— सोम पापीको नहीं छोडता।

८२९ मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न हिनोति— मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी वह नहीं छोडता।

८२९ रक्षः असत् वदन्तं हन्ति, उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते- राक्षसों और असत्यभाषण करनेवालेका वह वध करता है। ये दोनों इन्द्रके बन्धनमें पडते हैं।

८३० द्रोघवाचः ते निर्ऋथं सचन्तां— द्रोह भाषण करनेवाले निकृष्ट स्थितिको पहुंचें।

८३१ यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय— यदि मैं राक्षस बनूं तो आज ही मर जाऊं।

८३१ यदि पुरुषस्य आयुः ततप— यदि मैंने किसी-को कष्ट दिये हैं (तो मैं आज ही मर जाऊं।)

८३२ यः मा मोघं यातुधान इति आह, सः दशभिः वीरैः वियूयाः— जो मुझे व्यर्थ राक्षस करके कहता है वह अपने दसों पुत्रोंके साथ मर जाय।

(सुभाषित संख्या १०३८)

८३२ यः मा अयातुं यातुधान इत्याह, यः रक्षः शुचिः अस्मि इत्याह, इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु, सः विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट— जो मैं राक्षस न होते हुए मुझे राक्षस कहता है, जो स्वयं राक्षस होते हुए अपनेको शुद्ध करके पुकारता है, इन्द्र उसका वध बडे शस्त्रोंसे करे, वह सब प्राणियोंमें हीन दशाको प्राप्त हो जाय।

८३३ या नक्तं तन्वं गूहमाना अपप्रजिगाति, सा अनन्तान् वव्रान् अवपदीष्ट, ग्रावाणः उपब्दैः रक्षसः हन्तु- जो रातके समय अपने शरीरको ढंककर घूमती है, वह राक्षसी गढोंमें गिर जाय, तथा पत्थरोंसे राक्षस मारे जांय।

८३४ विक्षु वितिष्ठध्वं, इच्छत, गृभायत, रक्षसः संपिनष्टन- तुम प्रजाओंमें रहो, राक्षसोंको पहचाननेकी इच्छा करो, उनको पकडो और राक्षसोंको पीस डालो।

८३५ प्राक्तात् अपाक्तात् अधरात् उदक्तात्, रक्षसः पर्वतेन अभिजहि— पूर्व पश्चिम, दक्षिण उत्तरसे राक्षसोंका पर्वतास्त्रसे पराभव करो।

८३६ शक्रः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते— इन्द्र इन राक्षसोंको मारनेके लिये शस्त्र तीक्ष्ण करता है।

८३६ यातुमद्भ्यः अशनिं सृजत्— राक्षसोंपर अस्त्र फेंको।

८३७ इन्द्रः यातूनां पराशरः अभवत्— इन्द्र राक्षसोंको दूर करनेवाला है।

८३७ शक्रः रक्षसः अभ्येति— इन्द्र राक्षसोंपर आक्रमण करता है।

८३८ उलूकयातुं, शुशुलूकयातुं, श्वयातुं, कोकयातुं, सुपर्णयातुं, उत गृध्रयातुं प्रमृण, रक्ष च— उल्लूके समान, भेडियेके समान, कुत्तेके समान, चिडियेके समान, गरुडके समान, गीधके समान चाल चलनवाले जो राक्षस हैं, उनका वध कर और हमारी रक्षा कर।

८३९ रक्षः अभिनद्- राक्षस नष्ट हो जांय।

८३९ यातुमावतां मिथुना अपोच्छतु- यातना देनेवाले राक्षसोंके स्त्रीपुरुषोंके जोडे हमसे दूर हों।

८३९ या किमीदिना अपोच्छन्तु— जो सदा खानेवाले हैं वे हमसे दूर हों।

८४० पुमांसं यातुधानं जहि— पुरुष राक्षसका नाश करे।

८४० मायया शाशदानां स्त्रियं जहि— कपटसे हिंसा करनेवाली राक्षसीका भी नाश कर।

८४० मूरदेवाः विग्रीवासः सन्तु— मूढोंके पूजक राक्षसोंका गला कट जाय।

८४१ प्रतिचक्ष्व, जागृतं, रक्षोभ्यो वधं, यातुमद्भ्यः अशनिं अस्यतं- देखो, जागो, राक्षसोंपर शस्त्र फेंको और यातना देनेवालोंपर वज्र फेंको।

(ऋ० ८।८७।१-६)

८४३ मधुमन्तं घर्मं पिबतं- मीठा गरम रस पीओ।

८४३ बर्हिः आसीदतं- आसनोंपर बैठो।

८४३ मनुषः दुरोणे मन्दसाना वेदसः निपातं— मनुष्योंके घरोंमें आनन्दसे रहकर धनोंका संरक्षण करो।

८४५ सुमत् बर्हिः आसीदतं- सुखकारक आसनपर बैठो।

(ऋ० ९।६७।१९-३२)

८४८ स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्— काव्यमें उत्तम बल है।

८५० यत् भयं अन्ति, यत् दूरके, तत् विजहि— जो भय समीप या दूर हो वह दूर हो जाय।

८५१ विचर्षणिः पोता पवमानः नः पुनातु— विशेष निरीक्षण करनेवाला पवित्र करनेवाला, हमें पवित्र करे।

८५२ यत् ते अर्चिषि अन्तः विततं पवित्रं ब्रह्म नः पुनीहि— तुम्हारे तेजमें जो फैला हुआ पवित्र ज्ञान है वह हमारी पवित्रता करे।

८५६ देवजनाः मां पुनन्तु— दिव्य विबुध हमें पवित्र करें।

८५९ अलाय्यस्य परशुः तं ननाश— आक्रमणकारी शत्रुका शस्त्र उसीका नाश करे।

८६० ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः यः अध्येति स पूतं अश्नाति— ऋषिओंद्वारा इकठ्ठा किया हुआ ज्ञानरूप यह रस जो अध्ययन करता है वह सब पवित्र अन्न सेवन करता है। (सुभा० सं० ११३५)

८६२ ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः अध्येति, तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे- ऋषियोंद्वारा संग्रहित किया इस विद्यारूपी रसका जो अध्ययन करता है, उसको यह विद्या दूध, घी, मध और जल भरपूर देती है।

(ऋ० ९।९०।१-६)

८६२ आयुधा संशिशानः— वीर अपने शस्त्रोंको तेज करता है।

८६३ रत्नधाः वार्याणि विद्यते- रत्नोंका धारण करनेवाला धनी धनोंका दान करता है।

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्, जेता तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा, समत्सु अषाळ्हः पृतनासु शत्रून् साह्वान् धनानि सनिता— शूरोंका संघ बनानेवाला, सब वीरोंको पास रखनेवाला, शत्रुका पराभव करनेवाला, विजयी, तीक्ष्ण आयुधवाला, धनुष्य अतिशीघ्र चलानेवाला, युद्धोंमें असह्य, युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर धनोंका दान करता है।

८६५ अभयानि कृण्वन्— निर्भयता स्थापन कर।

८६५ पुरंधीः समीचीने— विशाल बुद्धि निर्दोष हो।

८६७ ऋतुमान् राजा इव अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्— उत्तम प्रजापालनरूप कर्म करनेवाला राजा अपने बलसे सब अनिष्टोंको दूर करे।

(ऋ० ९।९७)

८६९ भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः- हितकारी तथा युद्धके योग्य वस्त्रोंका धारण करनेवाला वीर हो।

८६९ महान् कविः निवचनानि शंसन्- बडा कवि सुंदर वचनोंको कहता है।

८६९ विचक्षणः जागृविः- ज्ञानी जाग्रत रहता है।

८७० यशसां यशस्तरः, क्षैतः प्रियः- यशस्वी वीरोंमें यह वीर अधिक यशस्वी और भूमिपर यह वीर अधिक प्रिय है।

८७४ देवानां जनिमा विवक्ति- देवोंके जीवनवृत्त वह कहता है।

८७४ महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः- बडे नियमोंका पालक शुद्ध बन्धु जैसा पवित्र करनेवाला होता है।

८७७ रक्षः हन्ति, अरातीः परिबाधते, वरिवः कृण्वन्, वृजनस्य राजा— राक्षसोंको मारता, शत्रुओंको बाधा पहुंचाता है, धन निर्माण करता है ऐसा यह वीर बलिष्ठ राजा है।

८७९ ऋतुथा वसानः प्रियाणि धर्माणि- ऋतुके अनुसार व्यवहार चलाकर अपने प्रिय धर्मनियमोंका पालन करता है।

८८० आजौ वग्नुः आशृण्वे- युद्धके समय बडा शब्द सुनाई देता है।

८८१ सुपथा सुगानि कृण्वन्- उत्तम मार्गोंको सुगम करो।

८८३ दुरितानि विष्वक् विघ्नन्- पापियोंको चारों ओरसे काटो।

८८५ ऋजुं गातुं वृजिनं च— सीधा मार्ग करो और बल बढाओ।

८८५ पस्त्यावान् मर्त्यः- घरवाला मनुष्य हो।

८८६ सहस्रधारः अदब्धः नृषह्ये वाजसातौ परिस्रव- सहस्रों धारावाले शस्त्रोंको धारण करनेवाला, अदम्य शक्तिवाला वीर मनुष्योंद्वारा बलसे किये जानेवाले संग्राममें अन्नके बंटवारेके लिये जाता रहे।

८८८ उग्रं वीरवन्तं रयिं ददातु— उग्र वीरोंसे युक्त धन देवे।

८९० राजा वृजन्यस्य धर्मा बभूव- राजा बलवर्धन करनेका कर्तव्य करनेवाला होता है।

८९१ देवानां उत मर्त्यानां राजा रयीणां रयिपतिः- देवों और मानवोंका यह राजा धनोंका स्वामी है।

८९३ नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु- हमे उत्तम वीरोंसे, वीर पुत्रोंसे युक्त धन देवें।

८९६ महतः धनस्य पुरएता असि— तू बडे धनका नेता है।

८९७ धीरः राजा मित्रं न हिनस्ति- धैर्यवान् राजा अपने मित्रका नाश नहीं करता है।

(ऋ० ९।१०८)

८९९ स्वायुधः नृभिः युक्तः- उत्तम शस्त्रधारी वीर नेताओंसे युक्त रहता है।

(ऋ० १०।१३७।७)

९०१ अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां त्वा उपस्पृशामि- नीरोगिता स्थापन करनेवाले दोनो हाथोंसे तुम्हें मै स्पर्श करता हूं। (इससे तुम नीरोग हो जाओगे।)

(सुभा० सं० ११५४)

*

(अथर्व० ३।१९)

९०१ येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि, तेषां क्षत्रं अजरं अस्तु- जिनका मैं विजय देनेवाला पुरोहित हूं, उनका क्षात्रबल कभी क्षीण नहीं होगा।

९०२ मे इदं ब्रह्म वीर्यं बलं संशितं— मेरे प्रयत्नसे (इसके राष्ट्रमें) ज्ञान, वीर्य और बल तेजस्वी हुआ है।

९०३ अहं एषां राष्ट्रं स्यामि- मैं इनका राष्ट्र तेजस्वी करता हूं।

९०३ ओजः वीर्यं बलं संस्यामि- (मैं इनके राष्ट्रमे) वीर्य और बल बढाता हूं।

९०३ शत्रूणां बाहून् वृश्चामि- शत्रुओंके बाहुओंको मैं काटता हूं।

९०४ ये नः मघवानं सूरिं पृतन्यात्, ते नीचैः पद्यन्तां, अधरे भवन्तु- जो हमारे धनवान् ज्ञानीपर सैन्यको छोड देते हैं, वे नीचे गिरें और अवनत हों।

९०४ अहं ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि, स्वान् उन्नयामि- मैं ज्ञानसे शत्रुओंको क्षीण करता हूं। और अपने लोगोंकी उन्नति करता हूं।

९०५ येषां अहं पुरोहितः अस्मि, तेषां परशोः तीक्ष्णीयांसः अग्नेः तीक्ष्णतराः, वज्रात् तीक्ष्णीयांसः- जिनका मैं पुरोहित हूं उनके शस्त्र परशु, अग्नि और वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण करके रखूंगा।

९०६ अहं एषां आयुधा संस्यामि- मैं इनके आयुध तीक्ष्ण करता हूं।

९०६ एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि- इनका राष्ट्र उत्तम वीरोंसे युक्त करके बढाता हूं।

९०६ एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु- इनका क्षात्र-तेज अक्षय जयशाली होगा।

९०७, वाजिनानि उद्धर्षन्तां, जयतां वीराणां घोषः उदेतु- इनके सैन्य उत्तेजित हों, विजयी वीरोंके घोष आकाशमें उठें।

९०७ केतुमन्तः घोषाः उदीरतां- ध्वजवाली सेनाका घोष ऊपर उठे।

(अथर्व ३।२०)

९११ हे विशांपते ! इह नः अच्छ वद, नः प्रत्यङ् सुमनाः भव- हे प्रजाके पालक ! यहां हमारे साथ अच्छी-तरह भाषण कर और प्रत्येकके साथ उत्तम मनसे बर्ताव कर।

९१४ त्वं नः दातवे दानाय रयिं चोदय— तूं हमें देनेके लिये धनको भेजो।

९१५ नः सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः असत्— हमारे सब लोग संगठनमें उत्तम मनसे रहें। उत्तम विचार धारण करें।

९१७ सर्ववीरं रयिं नियच्छ—सब वीरोंको धन दो।

९१९ गोसनिं वाचं उदेयं— गौका दान करनेका ही भाषण करूंगा।

(अथर्व० ३।२१)

९२३ धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः- धीर वीर समर्थ, विजयी और न दब जानेवाला वीर होता है।

(अथर्व० ३।२१)

९३१ येन वर्चसा मनुष्येषु राजा बभूव, तेन वर्चसा मां वर्चस्विनं कृणु- जिस तेजसे मनुष्योंमें राजा तेजस्वी होता है, उस तेजसे मुझे तेजस्वी कर।

(अथर्व. ४।२२)

९३६ मे इमं क्षत्रियं वर्धय— मेरे इस क्षत्रियको बढा।

९३६ मे इमं विशां एकवृषं कृणु- मेरे इस क्षत्रियको प्रजाओंमें अद्वितीय बलवान् राजा कर।

९३६ अस्य सर्वान् अमित्रान् निरक्ष्णुहि- इस राजाके सब शत्रुओंको निर्बल बना दो।

९३६ अहं उत्तरेषु तान् अस्मै रन्धय- युद्धोंमें उन शत्रुओंको इसके सहायतार्थ विनष्ट कर।

९३७ यः अस्य अमित्रः तं निर्भज- जो इसका शत्रु है उसको (धनका भाग) न दो।

९३७ अयं राजा क्षत्राणां वर्ष्म अस्तु- यह राजा सब क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ हो जाय।

९३८ अयं धनानां धनपतिः अस्तु— यह धनोंका स्वामी हो।

९३८ अयं राजा विशां विश्पतिः अस्तु- यह राजा प्रजाओंका पालक हो।

९३८ अस्मिन् महि वर्चांसि धेहि— इस राजामें सब तेजोंका निवास करो।

९३८ अस्य शत्रुं अवर्चसं कृणुहि- इसके शत्रुको निस्तेज कर।

९३९ अयं राजा इन्द्रस्य प्रियः भूयात्— यह राजा-इन्द्रका-प्रभुका- प्रिय हो।

९४० येन जयन्ति, न पराजयन्ते— जिससे निःसंदेह जय होता है और कभी पराजय नहीं होता वह बल है।

९४० त्वा जनानां एकवृषं मानवानां राज्ञां उत्तमं करत्- तुझे लोकोंमें एक मात्र बलवान् और मानवोंमें तथा राजाओंमे श्रेष्ठ करता हूं।

९४१ हे राजन्! त्वं उत्तरः, ते सपत्नाः शत्रवः अधरे— हे राजा! तूं ऊंचा हो, तेरे शत्रु नीचे हों।

९४१ त्वं एकवृषः जिगीवान् शत्रूयतां भोजनानि आभर— तूं अद्वितीय बलवान् और विजयी होकर शत्रुओंके भोगके पदार्थ इधर लाकर रख।

९४१ सिंहप्रतीकः सर्वा विशः अद्धि— तूं सिंहके समान पराक्रम करनेवाला हो और सब प्रजाजनोंको पर्याप्त भोजन सामग्री दो।

९४१ व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अवबाधस्व- व्याघ्रके समान सब शत्रुओंको बाधा पहुंचाओ।

९४२ एकवृषः जिगीवान् शत्रूयतां भोजनानि आखिद- अद्वितिय बलवान् और विजयी होकर शत्रुओंके भोगसाधन खींचकर इधर लाओ।

(अथर्व १९।११।६)

९४३ शंयोः तत् इदं शस्तं असभ्यं अस्तु— शान्ति और सुख देनेवाला यह प्रशंसायोग्य ज्ञान हमें प्राप्त हो।

९४३ गाधं उत् प्रतिष्ठां अशीमहि— गंभीरता और प्रतिष्ठा हमे प्राप्त हो।

९४३ महते दिवे सादनाय नमः— बडे दिव्य घरके लिये आदर हो।

९४४ सुजातता तमः अपसंवर्तयति- उत्तम कुलीनके अज्ञानके अन्धकारको दूर करते हैं।

९४४ सुवीरः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीरोंके साथ हम सौ वर्ष आनन्दमें रहेंगे।

९४५ वज्री वृषभः तुराषाट् शुष्मी वृत्रहा राजा- वज्रधारी, बलवान, शत्रुको दबानेवाला, सामर्थ्यवान, शत्रुनाशक राजा हो। (सुभा० सं०११९८)

॥ यहां सुभाषितोंका संग्रह समाप्त हुआ ॥

वसिष्ठ मन्त्र सूची।

×४६५ अंसेष्वा मरुतः खादयो वः *७।५६।१३, मै० सं० ४।१४।१८; २४७।१५, तै० ब्रा० २।८।५।५

१०३ अगन्म महा नमसा यविष्ठं ७।१२।१; सा० सं० २।६५४; मै० सं० २।१३।५; १५४।१; का० सं० ३९।१३; ऐ० ब्रा० ५।२०।६; कौ० ब्रा० २६।१४; तै० ब्रा० ३।११।६।२; पं० वि० ब्रा० १५।२।२

३७ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा। ७।३।१; सा० सं० २।५६९; का० सं० ३५।१; ऐ० ब्रा० ५।१८।६; कौ० ब्रा० २६।११; पं० वि० ब्रा० १४।८।१

१ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योः। ७।१।१; सा० सं० १।७२; २।७२३; का० सं० ३४।१९; ३९।१५; ऐ० ब्रा० ५।५।१६; कौ० ब्रा० २२।७; २५।११;

१०१ अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्य ७।११।४

१२१ अग्नी रक्षांसि सेधति ऋ० १।७९।१२; ७।१५।१०; अथर्व० ८।३।२६; मै० सं० ४।११।५; १७४।९; का० सं० २।१४; १५।१२; तै० ब्रा० २।४।१।६

९११ अग्ने अच्छा वदेह नः ऋ. १०।१४१।१, अथर्व. सं ३।२०।२; वा० सं० ९।२८; तै० सं० १।७।१०।२; मै० सं० १।११।४; १६४।६ का० सं० १४।२ श० ब्रा० ५।२।२।१०

१३९ अग्ने भव सुषमिधा समिद्धः ७।१७।१

९१ अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो ७।९।५; मै० सं० ४।१४।११; २३३।२; तै० ब्रा० २।८।६।४

११४ अग्ने रक्षा णो अंहसः ७।१५।१३; सा० सं० १।२४; मै० सं० ४।१०।१; १४१।१०; का० सं० २।१४; तै० ब्रा० २।४।१।६

१४१ अग्ने वीहि हविषा यक्षि ७।१७।३

६४३ अचेति दिवो दुहिता मघोनी ७।७८।४

९५ अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः ७।१०।३; मै० सं० ४।१४।३, २१८।७; तै० ब्रा० २।८।२।४

३५५ अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा ७।३६।९

६०८ अतारिष्म तमसस्पारमस्य ऋ० सं० १।९२।६; १८३।६; १८४।६; ७।७३।१; मै० सं० २।७।१२; ९२।१७; का० सं० १७।१८

४६८ अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चः ७।५६।१६, तै० सं० ४।३।१३।७; मै० सं० ४।१०।५; १५५।६; का० सं० २१।१३

८३१ अद्या मुरीय यदि यातुधानः ७।१०४।१५, अथर्व० सं० ८।४।१५; निरु० ७।३

८७८ अध धारया मध्वा पृचानः ऋ० ९।९७।११, सा० सं० २।३७०

१५७ अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु ७।१८।१२

७०५ अधा न्वस्य सदृशं जगन्वान् ७।८८।२

१२५ अधा मही न आयस्य ७।१५।१४

६१७ अधा ह यन्तो अश्विना ७।७४।५

७७७ अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन ७।९८।१, अथर्व० सं० २०।८७।१;

३३० अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु ७।३४।२४

३६९ अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट ७।३८।६

६३७ आन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं ७।७७।४

८१० अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोः ७।१०३।४

६६१ अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा ७।८२।३

५९७ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते ७।७१।१; कौ० ब्रा० २६।११

७१४ अपां मध्ये तस्थिवांसं ७।८९।४

३६६ अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु ७।३८।३

८७ अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता ७।९।१

३११ अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने ७।३४।१६; निरु० १०।४४

१९७ अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन् न ७।२१।६; तै० सं० ७।४।१५।१; तै० ब्रा० ३।८।४।३

८६३ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधां ऋ० ९।९०।२; सा० सं० १।५२८; २।७५८

× मन्त्रपूर्वस्थिताङ्कश्च वासिष्ठमन्त्राणां क्रमाङ्को ज्ञातव्यः। * अत्र सप्तमं मण्डलं ऋग्वेदस्य बोध्यं सर्वत्र प्रथमम्।

८ आ यस्ते अग्न इधते अनीकं ७।१।८
६१५ आ यातमुप भूषतं मध्वः ७।७४।३; वा० सं० ३३।८८
५६२ आ यातं मित्रावरुणा ७।६६।१९; गो० ब्रा० २।३।१३
७४ आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा ७।७।२
३६ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ् ७।२।११, ३।४।११
५१ आ यो योनिं देवकृतं ससाद ७।४।५
५३५ आ राजाना मह ऋतस्य गोपा ७।६४।२
१६४ आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च ७।१८।१९
५९९ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ ७।७१।३
५८९ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो ७।६९।१; मै० सं० ४।१४।१०, २२९।११; तै० ब्रा० २।८।७।६
६७९ आ वा राजानावध्वरे ववृत्यां ७।८४।१
८४४ आ वां विश्वाभिरूतिभिः ८।८७।३; ८।८।१८
३४९ आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्याः ७।३६।३
७३० आ वायो भूष शुचिपा उप नः ७।९२।१, वा० सं० ७।७; तै० सं० १।४।४।१; ३।४।२।१; मै० सं० १।३।६; ३२।९; का० सं० ४।२;१३।११।१२; ऐ० ब्रा० ५।१६।११; कौ० ब्रा० २६।१५ श० ब्रा० ४।१।३।१८
५९० आ विश्ववाराश्विना गतं नः ७।७०।१; ऐ० ब्रा० ५।२०।८; कौ० ब्रा० २६।१५
३५६ आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै ७।३७।१
४७० आ वो होता जोहवीति सत्तः ७।५६।१८
५७३ आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा ७।६८।१
४८४ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती ७।५७।७
८०२ इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे ७।१०१।५; का० सं० २०।१५
८५ इदं वचः शतसाः संसहस्रम् ७।८।६
८७२ इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन् ऋ० ९।९७।५
८७७ इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा ऋ० ९।९७।१०; सा० सं० १।५४०; २।३६९; पं० विं० ब्रा० १३।५।६
२३५ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा ७।३१।१२; सा० सं० २।११४५
१९१ इन्द्र क्रतुं न आ भर ७।३२।२६; अथर्व० १८।३।६७; २०।७९।१; सा० सं० १।२५९; २।८०६; तै० सं० ७।५।७।४; का० सं० ३३।७; ऐ० ब्रा० ४।१०।२; पं० विं० ब्रा० ४।७।२।८

८४० इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत ७।१०४।२४
२३४ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते ७।२७।१; सा० सं० १।३१८; तै० सं० १।६।१२।१, मै० सं० ४।१२।३; १८४।१७, ४।१४।५; २२१।११; कौ० ब्रा० २६।१५
९६ इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा ७।१०।४
९१५ इन्द्रवायू उभाविह अथर्व० ३।२०।६
९०० इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा ९।१०८।१६, ९।७०।९
७४९ इन्द्राग्नी अवसा गतं ७।९४।७
८९९ इन्द्राय सोम पातवे नृभिः ९।१०८।१५, ९।११।८, ९८।१०; सा० सं० २।६८१, ७९८, १०२९
६६३ इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा ७।८२।५
६५९ इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे ७।८२।१; तै० सं० २।५।१२।२; मै० सं० ४।१२।४ १८७।१; गो० ब्रा० २।४।१५
६७२ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं ७ ८३।४
६७३ इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति ७।८३।५
७८८ इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य ७।९९।५; तै० सं० ३।२।११।३; मै० सं० ४।१२।५, १९२।४
८१७ इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं ७।१०४।१; अथर्व० ८।४।१; का० सं० २३।११
८१९ इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे ७।१०४।३; अथर्व० ८।४।३
८२२ इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वतः ७।१०४।६; अथर्व० ८।४।६
८२१ इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिः ७।१०४।५, अथर्व० ८।४।५
८२० इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं ७।१०४।४; अथर्व० ८।४।४
८१८ इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं ७।१०४।२; अथर्व० ८।४।२; का० सं० २३।११; निरु० ६।११
७४६ इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् ७।९४।४; सा० सं० २।१५०; पं० विं० ब्रा० ११।७।३; १४।८।७
१६० इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा ७।१८।१५; निरु० ७।२
८३७ इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरः ७।१०४।२१; अथर्व० ८।४।२१; निरु० ६।३०
२३६ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि ७।२७।३; अथर्व० १९।५।१; आ० सं० २।९; मै० सं० ४।१४।१४; १३८।३; तै० ब्रा० २।८।५।८

७५८ उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप ७।९५।४; मै० सं० ४।१४।७; २२५।१५; ऐ० ब्रा० ५।१८।८; कौ० ब्रा० २५।१,२६।११

६९० उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् ७।८६।२

५४९ उत स्वराजो अदितिः ७।६६।६; सा० सं० २।७०३

३०३ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ७।३३।११; निरु० ५।१४

३८९ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत ७।४१।४; अथर्व० ३।१६।४; वा० सं० ३४।३७ तै० ब्रा० २।८।९।८

२४७ उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन् ७।२९।४

४४१ उतो हि वा रत्नधेयानि सन्ति ७।५३।३

९४१ उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये अथर्व० ४।२२।६; तै० ब्रा० २।४।७।८

५१२ उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु ७।६२।१

४१० उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता ७।४५।२

३१३ उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त ७।३४।७; मै० सं० ४।९।१४; १३४।१०

१२९ उदस्य शोचिरस्थादा ७।१६।३; ८।२३।४; तै० सं० ४।४।४।५; का० सं० ३९।१५

२७७ उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशः ७।३२।१२; अथर्व० २०।५९।३; गो० ब्रा० २।४।३

६२७ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं ७।७६।१; निरु० ११।१०

३६५ उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१ स्य ७।३८।२

५५७ उदु त्यद् दर्शतं वपुः ७।६६।१४

२११ उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं ७।२३।१; अथर्व० २०।१२।१; सा० सं० १।३३०; ऐ० ब्रा० ६।१८।३;२०।७ कौ० ब्रा० २९।६; गो० ब्रा० २।४।२;६।१।२

३६४ उदुष्य देवः सविता ययाम ७।३८।१

६०५ उदु स्तोमासो अश्विनोः ७।७२।३

६०४ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः ७।८१।२; सा० सं० २।१०१; तै० ब्रा० ३।१।३।२

१९७ उद् यामिवेत् तृष्णजो नाथितासः ७।३३।५

९०७ उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् अथर्व० ३।१९।६

३९ उद् यस्य ते नवजातस्य ७।३।३; सा० सं० २।५७१

५१५ उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं ७।६१।१; कौ० ब्रा० २५।२; २६।८

५०६ उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो ७।६०।४; मै० सं० ४।१२।४; १८७।१५

५१९ उद्वेति प्रसवीता जनाना ७।६३।२

५२८ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षा. ७।६३।१

६११ उप त्या वह्नी गमतो विशं नः ७।७३।४

११० उप त्वा सातये नरो विप्रासो ७।१५।९

८५८ उप प्रिय पानिप्नतं युवानं ऋ० ९।६७।२९; अथर्व० ७।३२।१; ऐ० ब्रा० १।३०।१०; कौ० ब्रा० ९।६

६ उप यमेति युवति सुदक्ष दोषा। ७।१।६, तै० सं० ४।३।१३।६

१११ उपसद्याय मीळ्हुष ७।१५।१; ऐ० ब्रा० १।२५।७; कौ० ब्रा० ८।८

५९८ उपायातं दाशुषे मर्त्याय ७।७१।२

६३४ उपो रुरुचे युवतिर्न योषा ७।७७।१

७३७ उपो ह यद् विदथं वाजिनः ७।९३।३; मै० सं० ४।११।१; १५९।९; तै० ब्रा० ३।६।१२।१

८५४ उभाभ्यां देव सवितः ऋ० ९।६७।२५; अथर्व० ६।१९-३; वा० सं० १९।४३; मै० सं० ३।११।१०; १५५। १७; का० सं० ३८।२; तै० ब्रा० १।४।८।२; २।६।३।४

१८५ उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा ७।२०।४

७६२ उभे यत् ते महिना शुभ्रे ७।९६।२

७८७ उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं ७।९९।४, १।९३।६; तै० सं० २।३।१४।२; मै० सं० ४।१४।१८, २४८।५; का० सं० ४।१६

८६५ उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन् ऋ० ९।९०।४; सा० सं० २।७।६०

२६४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ७।३१।११; सा० सं० १।११४४

८३८ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि ७।१०४।२२, अथर्व० ८।४।२२

७०० उवाच मे वरुणो मेधिराय ७।८७।४

३५८ उवोचिथ हि मघवन् देष्णं महो ७।३७।३

७२४ उशन्ता दूता न दभाय गोपा ७।९१।२; ऐ० ब्रा० ५।१८।८

९४४ उषा अप स्वसुस्तमः अथर्व० १९।१२।१, ऋ० १०।१७२।४; सा० सं० १।४५१

९३ उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् ७।१०।१

२६२ ऊर्ध्वा सस्वान्विन्दवो भुवन् ७।३१।९

३७१ ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो ७।३९।१; ऐ० ब्रा० ५।१८।८; कौ० ब्रा० २६।१५

१५६ एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या ७।१८।११

५७० एकस्मिन् योगे भुरणा समाने ७।६७।८

७५६ एकाचेतन् सरस्वती नदीना ७।९५।२; मै० सं० ४।१४।७; २२६।२

८३६ एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातवः ७।१०४।२०; अथर्व० ८।४।२०

७४२ एता अग्न आशुषाणास इष्टीः ७।९३।८

६४२ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताद् ७।७८।३

४५६ एतानि धीरो निण्या चिकेत ७।५६।४

४६ एता नो अग्ने सौभगा दिदीहि ७।३।१०, ४।१०

६२१ एते त्ये भानवो दर्शताया ७।७५।३

७८ एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त ७।७।६

१८० एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यं ७।१९।१०; अथर्व० २०।३७।१०

१२७ एना वो अग्निं नमसोर्जो ७।१६।१; सा० सं० १।४५; २।९९, वा० सं० १५।३२।; तै० सं० ४।४।४।४; मै० सं० २।१३।८, १५७।३; का० सं० ३९।१५

२४२ एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो ७।२८।४

९३७ एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु अथर्व० ४।२२।२

३९८ एवाग्निं सहस्यं १ वसिष्ठः ७।४२।६

२३२ एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र ७।२६।४

८९४ एवा देव देवताते पवस्व ऋ० ९।९७।२७

८८८ एवा न इन्दो अभि देववीतिं ऋ० ९।९७।२१

२२२ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि ७।२४।६; ७।२५।६

४०३ एवा नो अग्ने विश्वा दशस्य ७।४३।५

८८२ एवा पवस्व मदिरो मदाय ऋ० ९।९७।१५; सा० सं० २।१५८

८६७ एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन ऋ० ९।९०।६

९३३ एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन् ७।२६।५

११६ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं ७।२३।६; अथर्व० २०।१२।६, वा० सं० २०।५४; का० सं० ८।१६; ऐ० ब्रा० ६।२३।२; गो० ब्रा० २।४।२

१९५ एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु ७।३३।३

८४९ एष तुन्नो अभिष्टुतः ऋ० ९।६७।२०

१९० एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा ७।२०।९

२११ एष स्तोमो मह उग्राय वाहे ७।२४।५

५३८ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं ७।६४।५; ६५।५

५८१ एषस्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे ७।६८।९

५०४ एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा ७।६०।२

५६९ एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये ७।६७।७

६३३ एषा नेत्री राधसः सूनृतानां ७।७६।७

९०६ एषामहमायुधा सं स्यामि अथर्व० ३।१९।५

६५१ एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी ७।८०।२

६२२ एषा स्या युजाना पराकान् ७।७५।४

३७९ ओ श्रुष्टिर्विदथ्या ३ समेतु प्रति ७।४०।१

४९५ ओ षु घृष्विराधसो ७।५९।५

४५३ क ईं व्यक्ता नरः सनीळा ७।५६।१, सा० सं० १।४३३, ऐ० ब्रा० ५।५।१३; कौ० ब्रा० २२।९

८२ कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं ७।८।३

६७ कविं केतुं धासिं भानुमद्रेः। ७।६।२

२७९ कस्तमिन्द्र त्वावसुमा ७।३२।१४; सा० सं० १।२८०; २।१०३२; ऐ० ब्रा० ६।२१।१; गो० ब्रा० २।४।१; ६।३ पं० विं० ब्रा० २१।९।१६

२४६ का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः ७।२९।३

५६० काव्येभिरदाभ्याऽऽयातं ७।६६।१७

६९१ किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् ७।८६।४

७९६ किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् ७।१००।६; सा० सं० २।९७५; तै० सं० २।२।१२।५, मै० सं० ४।१०।१; १४४।४ निरु० ५।८

१९९ कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशान् ७।२१।८

२२७ कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे ७।२५।५

७२३ कुविदंग नमसा ये वृधासः ७।९१।१; मै० सं० ४।१४।२; २१६।११; ऐ० ब्रा० ५।१८।८; कौ० ब्रा० २५।२; २६।११

६० तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौः । ७।५।४

२४१ तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान् १।२८।३

७८२ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत्‌ ७।९८।६; अथर्व० २०।८७।६; मै० सं० ४।१४।५; २२१।१५; तै० ब्रा० २।८।१।६

२८१ तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं ७।३२।१६; सा० वे० १।२७०

८०६ तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता ७।१०२।३; तै० ब्रा० २।४।५।६

४८९ ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे ७।५८।५

५४६ ता नः स्तिपा तनूपा ७।६६।३

६२९ तानीदहानि बहुलान्यासन् ७।७६।३

३२८ ता नो रासन् रातिषाचो वसून्या ७।३४।२२

५४१ ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू ७।६५।३

६४ ताममे अस्मे इषमेयरस्व ७।५।८

६४८ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व ७।७९।४

७४८ ता वां गीर्भिर्विपन्यवः ७।९४।६; सा० सं० २।१५२

७५४ ता विद् दुःशंसं मर्त्यं ७।९४।१२

७३६ ता सानसी शवसाना हि भूतं ७।९३।२

५४० ता हि देवानामसुरा तावर्या ७।६५।२

७४७ ता हि शश्वन्त ईळ्त ७।९४।५; सा० सं० २।१५१; कौ० ब्रा० २५।१५

७०१ तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन् ७।८७।५

७९८ तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा ७।१०१।१

९०५ तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेः अथर्व० ३।१९।४

२०८ तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा ७।२२।७; अथर्व० २०।७३।१

४१८ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त ७।५२।३

४२३ ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा ७।४८।३

१४५ ते ते देवाय दाशतः स्याम ७।१७।७

२१५ ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु ७।२३।५; अथर्व० २०।१२।५;

७२० ते सत्येन मनसा दीध्यानाः ७।९०।५; ऐ० ब्रा० ५।२०।८; कौ० ब्रा० २६।८

४०२ ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ७।४३।४

५५२ ते स्याम देव वरुण ते ७।६६।९; सा० सं० २।४१९; ऐ० ब्रा० ६।७।२; २३।४; गो० ब्रा० २।५।१३

३७५ ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं ७।३९।४; १०।७७।८

३१२ त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं ७।३४।६

२९९ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतः ७।३३।७; जै० ब्रा० २।१२६ (२४१)

८५५ त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः ऋ० ९।६७।२६

७९३ त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि ७।१००।३; मै० सं० ४।१४।५;२२१।९; तै० ब्रा० २।४।३।५

१०० त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि ७।११।३

५०२ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं ७।५९।१२; वा० सं० ३।६०; तै० सं० १।८।६।२; मै० सं० १।१०।४;१४४।१२; १।१०।२०;१६०।११ का० सं० ९।७।३६।१४, श० ब्रा० २।६।२।१२;१४, तै० ब्रा० १।६।१०।५

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा असि ७।३२।१७

७९२ त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यां ७।१००।२

४४८ त्वं सूकरस्य दर्दृहि ७।५५।४

१७२ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः ७।१९।२; अथर्व० २०।३७।२

५९ त्वद् भिया विश आयन्नसि ७।५।३

१७३ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं ७।१९।३; अथर्व० २०।३७।३

२५६ त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं ७।३१।३; सा० सं० २।६८

११६ त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्त ७।१५।१५,६।१६।३०

१७४ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ ७।१९।४; अथर्व० २०।३७।४, तै० ब्रा० २।५।८।१०

९१४ त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म अथर्व० ३।२०।५; ऋ० १०।१४१।६; सा० सं० २।८५५

१३१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं ७।१६।५; सा० वे० १।६१; मै० सं० १।१३।८;१५७।५

५५ त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि ७।४।९;६।१५।१२

११३ त्वमग्ने वीरवद् यशो ७।१५।१२; मै० सं० ४।१०।१; १४३।१

१०७ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ ७।१३।२; तै० सं० १।५।११।२; मै० सं० ३।१६।५;१९२।१;४।१४।९; २२९।९

२१ त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती ७।१।२१

१९४ त्वमिन्द्र सवितवा अपस्कः ७।२१।३

३५९ त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा ७।३७।४

ऋषि दर्शन

ऋग्वेदमें अनेक ऋषियोंके दर्शन हैं। प्रत्येक पुस्तकमें एक एक ऋषिका तत्त्वज्ञान, संहिता-मंत्र, अन्वय, अर्थ और टिप्पणी है। निम्नलिखित ग्रंथ तैयार हुए हैं। आगे छपाई चल रही है—

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	मूल्य	१)	रु.	२ मेधातिथि	ऋषिका	दर्शन	मूल्य	१)	रु.
३ शुनःशेप	,,	,,	,,	१)	,,	४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	,,	१)	,,
५ कण्व	,,	,,	,,	१)	,,	६ सव्य	,,	,,	,,	१)	,,
७ नोधा	,,	,,	,,	१)	,,	८ पराशर	,,	,,	,,	१)	,,
९ गौतम	,,	,,	,,	१)	,,	१० कुत्स	,,	,,	,,	१)	,,
११ त्रित	,,	,,	,,	१)	,,	१२ संवनन	,,	,,	,,	०॥)	,,
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	,,	०॥)	,,	१४ नारायण	,,	,,	,,	१)	,,
१५ बृहस्पति	,,	,,	,,	१)	,,	१६ वागाम्भृणी	,,	,,	,,	१)	,,
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	,,	१॥)	,,	१८ सप्त	,,	,,	,,	०॥)	,,

१९ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन मूल्य ७) रु [प्रत्येकका डा. व्य अलग रहेगा।]

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय १ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश १॥) रु. अध्याय ३१ एक ईश्वरकी उपासना अर्थात् पुरुषमेध १॥) रु.
,, ३६ सच्ची शान्तिका सच्चा उपाय १॥) रु. अध्याय ४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद् १) ,,

डाक व्यय अलग रहेगा।

(३) संपूर्ण अथर्ववेदका सुबोध भाष्य मूल्य २६) रु. डा. व्य. ४) रु.

वेदके व्याख्यान

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद। ६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ये व्याख्यान तैयार हैं। दूसरे तैयार हो रहे हैं। [प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने और डा० व्य० =) दो आने]

उपनिषदोंके ग्रन्थ

१ ईश उपनिषद् मूल्य १) रु. डा. व्य. ।)
२ केन उपनिषद् मूल्य १॥) रु. डा. व्य. ॥)
३ कठ उपनिषद् ,, १॥) रु. डा. व्य. ॥)
४ प्रश्न उपनिषद् ,, १॥) ,, ,, ,, ॥)
५ मुण्डक उपनिषद् ,, १॥) रु. डा. व्य. ॥)
६ माण्डूक्य उपनिषद् ,, ॥) ,, ,, ,, =)

मंत्री- स्वाध्यायमण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (सूरत)